भाग २ अध्याय १०

श्रमनीति

वेतन नीति

प्रकाशक :—
भारतीय मजदूर संघ
२ नवीन मार्केट
कानपुर

मूल्य : २ रुपये

भाग २ अध्याय १०

श्रमनीति

वेतन नीति

●

—भारतीय मजदूर संघ

'Labour Policy' पुस्तक के अध्याय क्र० १० का यह हिन्दी रूपान्तर है। डा० महेन्द्र प्रताप सिंह (प्राध्यापक, वाणिज्य विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय) इस अध्याय के अनुवादक हैं। उनका मैं हृदय से आभारी हूं।

—प्रकाशक

अध्याय–१०

वेतन (भृत्ति)

भारत में भृत्तिहीनता एवं न्यूनवृत्ति योजना (Under employment) दोनों वातावरण को अत्यन्त प्रभावित करने वाले तत्व हैं, जिसने अन्य देशों की तुलना में अथवा मनुष्य जीवन की न्यूनतम आवश्यकताओं की तुलना में अपने देश में श्रमिक की भृत्ति को निम्न स्तर पर बनाये रखा है। इसने कुशल और अकुशल श्रमिक दोनों को प्रभावित किया है। उच्च स्तरों पर यह योग्यताओं को विदेशों की ओर आकर्षित कर रहा है। निम्न स्तरों पर इसने श्रमिकों को विनिमय शक्ति से हीन बना डाला है। कृषि श्रमिकों, छोटी दुकानों और संस्थानों के गुमास्तों, प्रायः सभी संस्थानों परन्तु विशेषतया छोटे पैमाने के उद्योगों के अकुशल श्रमिकों और घरेलू सेवाओं के श्रमिकों आदि की स्थिति घोर निर्धनता की स्थिति है। अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं की तुलना में पढ़े लिखे वर्ग की विपुलता ने इस वर्ग को भी अकुशल श्रमिकों की श्रेणी में पहुंचा दिया है।

उपरोक्त श्रेणियों के बीच कृषक श्रमिकों की श्रेणी एक ऐसी श्रेणी हैं जिसके पास सम्भवतया कोई भी विनिमय शक्ति नहीं है। ग्रामों की अर्थव्यवस्था आत्मनिर्भरतापूर्ण है। श्री बी० एस० व्यास, सरदार बल्लभ भाई विद्यापीठ गुजरात के द्वारा इस प्रकार के श्रमिकों का किया गया एक अधुनातन अध्ययन यह बतलाता है कि आकस्मिक पुरुष श्रमिक जो कि कृषक श्रमिक शक्ति का एक बड़ा भाग है–की औसत प्रतिदिन आय एक गाँव से दूसरे गाँव तक ८७ पैसे से लेकर १.०५ पैसे तक पायी जाती है। जहां तक भृत्ति सम्बन्धी अन्तरों का सम्बन्ध है वे अधिकतर किसी अन्य तत्व की अपेक्षा खेतिहरों की आय पर निर्भर पायी गयी थी। सेवायोजन की अवधि १४० से २५९ दिवसों की थी। चुने गये सर्वोत्तम और निकृष्ट चार ग्रामों में परिवार की आय ३९३) रु० प्रति वर्ष और ५८८ रु० प्रति वर्ष के बीच रहती थी। निकृष्ट ग्रामों में ४०% भुगतान वस्तु द्वारा प्रायः घटिया अनाज के माध्यम से और सर्वोत्तम ग्रामों में ९७% मजदूरी का भुगतान नगद दिया जाता था। इसके प्रतिकूल यह जान लेना उचित होगा कि १९६२–६३ में भारत के प्रति सेवा नियोजित व्यक्ति की औसत वार्षिक आय की

गणना ५०९ रुपया की गई है। विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित अंकों के आधार पर हमें निम्नलिखित प्रतिफल प्राप्त होते हैं :—

क्षेत्र	भृत्ति एवं वेतन (करोड़ रुपयों में)	कुल श्रमशक्ति (प्रति दस लाख)	औसत आय प्रति व्यक्ति (रुपये)
१	२	३	४
१–कृषि एवं सम्बन्धित क्रियायें।	१२४१.२	१२३.२८	१०१
२–खान उद्योग, निर्माणी एवं फैक्ट्री संस्थान।	९६६.१	४.६४	२०८२
३–लघु उद्योग (निर्माण सहित)	२२४.०	१२.०४	१८६
४–अन्य वाणिज्य एवं परिवहन।	३६३.७	१०.८०	३३७
५–संगठित बैंकिंग उद्योग एवं बीमा	१३७.५	०.१५	९१६७
६–नौकरियां एवं उन्मुक्त कलायें	५३१.०	९.३०	५७१
७–घरेलू सेवायें	२२०.०	९.४१	५००
८–सरकारी उद्योग	२८९.०	१.९१	१५१३
स्वयं नियोजित क्षेत्र की आय			
९–कृषि एवं सम्बन्धी क्रियायें	४४१०.०	४९.३१	८९४
१०–लघु उद्योग (निर्माण सम्मिलित)	७८९.४	४.०१	१९६९
११–अन्य वाणिज्य एवं परिवहन	१०८८.४	२.७०	४०३१
१२–नौकरियाँ एवं उन्मुक्त कलायें।	३०९.०	६.७१	४६५

स्रोत (उद्गम) :-

(१) स्कम्भ २, "The movement of distributive share in India 1948-49 to 1957" लेखक नारायण एवं बीनाराय, प्रकाशन राष्ट्रीय आय शोध पर तृतीय भारतीय कान्फ्रैंस, बम्बई १९६१ । समंक माला राष्ट्रीय कौंसिल फॉर एप्लायड इकनोमिक रिसर्च में भविष्यालोकित । उपरोक्त समंक सन् १९६२-६३ से सन्दर्भित ।

(२) स्कम्भ ३, केन्द्रीय सांख्यकी प्रतिष्ठान द्वारा प्रकाशित राष्ट्रीय आय समंक १९६१ की १९५५-५६ से १९५९-६० तक की समंक मालायें । १९६२-६३ के लिए उपरोक्त समंकों की प्राप्ति का आधार एक साधारण रेखात्मक भविष्यावलोकन विधि का प्रयोग ।

उसी स्रोत से भारत में मजदूरी आय की क्षेत्रीय स्थिति १९५३-५४ से १९५७-५८ वर्षो के लिए निम्न लिखित समंक प्राप्त किये गये हैं जो औसत वार्षिक मजदूरी की आय बतलाते हैं ।

क्षेत्र १	करोड़ रुपयों में आय २	राष्ट्रीय आय के प्रतिशत के रूप में- स्कम्भ-२ ३
संगठित क्षेत्र		
१-वाटिका उद्योग	८४	०.८
२-खनिज उद्योग	४८	०.५
३-फैक्टरी संस्थान	३९२	३.७
४-संदेश वाहन	३५	०.३
५-संगठित बैंकिंग एवं बीमा	६०	०.६
६-रेल उद्योग	१५१	१.४
७-सरकारी सेवायें	५७०	५.४
असंगठित क्षेत्र		
८-कृषि	८००	७.६
९-वन उद्योग	२८	०.३
१०-मत्स्य उद्योग	५	०.१
११-लघु उद्योग	१८३	१.७
१२-अन्य वाणिज्य एवं परिवहन	२४५	२.३
१३-नौकरियां एवं उन्मुक्त कलाएँ	३५६	३.४
१४-घरेलू सेवायें	१४६	१.४

इसी सम्बन्ध में, 'Iconomic Times' के रिसर्च ब्यूरो द्वारा किया गया एक अधुनातन अध्ययन महत्वपूर्ण ज्ञान प्रदान करता है। इसमें ब्रिटेन और भारत की तुलना की गई है। जो दोनों ही देशों के मजदूरी कमाने वाले व्यक्तियों के प्रभाव और उनकी आय के स्तरों के निर्धारण में सामूहिक विनिमयशीलता के प्रभाव को बतलाती है।

ब्रिटेन और भारत के मध्य एक तुलनात्मक सारणी

	ब्रिटेन	भारत
(१) कुल कर्मचारी जनसंख्या के प्रतिशत के रूप में मजदूरी एव वेतन अर्जक।	९३.३	५१.१
(२) राष्ट्रीय आय के प्रतिशत के रूप में मजदूरी एवं वेतन	७३.५	३० ५
(३) कार्यकारी जनसंख्या के प्रतिशत के रूप में मजदूर समठन की सदस्यता।	३९.८	२.१
(४) कुल श्रमिकों की संख्या के प्रतिशत के रूप में उन श्रमिकों की संख्या जो सामूहिक विनिमय से आच्छादित हैं।	३२.८	नगण्य
(५) राष्ट्रीय आय के प्रतिशत के रूप में स्वयंसेवा नियोजित व्यक्तियों की आय।	९.०	४४.९

उपरोक्त सारणियों से निम्नलिखित निश्कर्ष प्राप्त किये जा सकते हैं :—

(१) एक ऐसे परिवार में जो कृषि एवं तत्सम्बन्धी कार्यों पर निर्भर हो उन व्यक्तियों की संख्या जो किसी भी प्रकार की मृत्ति उपार्जित करते हैं अधिक प्रतिभाषित होती है। कदाचित जीवन निर्वाह की आवश्यकताओं एवं कार्य की अधिकता की ऋतु के प्रभाव से बाल एवं महिला श्रमिकों के सेवा नियोजन का प्रतिशत इस क्षेत्र में उच्च पाया जाता है।

(२) सगठित बैंकिंग एव बीमा के व्यवसाय में श्रमिकों को उच्चतम मजदूरी प्राप्त होती है। और उनके बाद दूसरा स्थान उन श्रमिकों का है जो खानों, निर्माणियों एवं फैक्टरी सस्थानों में कार्य करते हैं, परन्तु उनकी संख्या पूर्वोत्तर श्रमिकों से काफी कम है। तृतीय स्थान सरकारी उद्योगों का है। पुनः हम देखते हैं कि नौकरियों और उन्मुक्त कलाओं के श्रमिकों का स्तर सरकारी उद्योगों के श्रमिकों से काफी नीचा है और उनके तुरन्त बाद घरेलू सेवकों का स्थान है। समस्त व्यवसायों में वाणिज्य, परि-

वहन, लघु उद्योगों और कृषि एवं तत्सम्बन्धी क्रियाओं में संलग्न श्रमिकों का स्थान निकृष्ट है। यह महत्वपूर्ण है कि अन्तिम तीन व्यवसायों में जिनका उल्लेख किया गया है, उसी क्रम में स्वयं सेवानियोजित व्यक्तियों के लिये तुलनात्मक दृष्टि से एक उच्च क्षेत्र पाया जाता है।

(३) केवल नौकरियों और उन्मुक्त कलाओं के श्रमिकों को छोड़कर किसी भी सेवा से सम्बन्धित श्रमिकों की औसत आय उसी क्षेत्र के स्वयं नियोजित व्यक्तियों की अपेक्षा काफी कम है।

(४) देश की जनसंख्या का बड़ा भाग कृषि पर जीवित है। यद्यपि इस क्षेत्र में प्रति व्यक्ति आय अत्यधिक निम्न है। इस क्षेत्र की कुल आय राष्ट्रीय आय के प्रतिशत के रूप में सबसे अधिक है (७.६)। सरकारी सेवायें जिनमें रेलें भी सम्मिलित हैं एक बड़ा भाग प्रस्तुत करती हैं। इसके फलस्वरूप जनसेवी सेवाओं में प्राप्त होने वाले मजदूरी सम्बन्धी निर्णय अर्थव्यवस्था में केन्द्रीय महत्व का स्थान रखते हैं। महत्व के क्रम में इनके पश्चात कुल क्षेत्रीय आय के दृष्टिकोण से फैक्टरी संस्थानों, नौकरियों एवं उन्मुक्त कलाओं, अन्य वाणिज्य एवं परिवहन, लघु उद्योग एवं घरेलू सेवाओं में कार्य करने वाले व्यक्तियों का आता है। इनके अतिरिक्त अन्य क्षेत्र कुल राष्ट्रीय आय के एक प्रतिशत भाग से भी कम बनाते हैं। यह वर्गीकरण हमें एक ऐसा आधार प्रदान करता है जिसके आधार पर श्रमनीति के व्यवहार एवं विभिन्न प्रमुख क्षेत्रों में मजदूरी के निर्धारण और मजदूरी पर प्रभाव डालने वाले अनेक सिद्धान्तों का परीक्षण मूल्य मजदूरी, मूल्य वृद्धि, राष्ट्रीय मजदूरी नीति अथवा न्यूनतम मजदूरी आदि इत्यादि सम्भव हो सकता है।

(५) पिछली सारिणी से यह ज्ञात किया जा सकता है कि मजदूरी पर कमाने वाले श्रमिकों और उनकी कुल आय अब भारतीय अर्थव्यवस्था का एक बड़ा भाग बनाते हैं। यद्यपि अन्य विकसित देशों की अपेक्षा उनकी तुलना में काफी नीची है, परन्तु उसकी उपेक्षा स्वयं नियोजित क्षेत्र की अपेक्षा कम और अधिक नहीं की जा सकती है। परन्तु श्रमिक अधिक संगठित नहीं हैं जिसमें ट्रेडयूनियन सदस्यता कुल कार्यकारी जिन संख्या की दो प्रतिशत ही है, सामूहिक विनिमय का प्रभाव प्रायः शून्य हो, उसे यह नहीं कहा जा सकता है एक ऐसा देश है जहां संस्थामक प्रभावों पर फल को प्राप्ति नहीं किया जा सकता है। यह पहलू सतर्कता की ओर संकेत करता है कि विधायकों को वैधानिक मान्यता अथवा उद्योग के लिये राष्ट्रीय विनिमय नीतियों के

पग बिना विचारे न उठाया जाय।

समस्या के आकार की तुलना में ट्रेड यूनियन आन्दोलन के विकास की गति अत्यन्त धीमी रही है। एक अनुमान के अनुसार जहाँ फैक्टरियों में रोजगार १९६० से १९६४ तक ८ लाख अधिक हो गया है वहाँ इस अवधि में अपने वार्षिक वृत्त प्रस्तुत करने वाले प्रामाणिक ट्रेड यूनियनों की कुल सदस्यता प्रायः स्थिर रही है। संगठित श्रम की शक्ति के सम्बन्ध में हमें आश्चर्यजनक रूप में भिन्न-भिन्न अनुमान प्राप्य हैं जो २० लाख से ३६ लाख सदस्य तक हैं, परन्तु हम जानते हैं कि जो कुछ भी परिवर्तन दृष्टि-गोचर होता है वह पारस्परिक झगड़ों एवं जीवन निर्वाह कारक प्रयत्नों का प्रतिफल है। फलतः संगठित क्षेत्र में भी हमें सामूहिक सौदों की घटनायें कम दिखलाई पड़ती हैं, और मजदूरी के मामलों में तृतीय पक्ष के फैसलों की भरमार मिलती है।

उपरोक्त सब कुछ कहने के पश्चात यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि ट्रेड यूनियन मजदूरी के निर्धारण में कुछ भाग आवश्य ले रहे हैं। विशेष रूप से अर्थ व्यवस्था के संगठित क्षेत्र में इस मामले में ट्रेड यूनियनों का कुछ प्रभाव भी हो रहा है और अब यह शोर भी मचने लगा है कि संगठित श्रम के द्वारा प्राप्त मँहगाई भत्तों की दरें मजदूरी से प्रभावित मुद्रा स्फीति अर्थ व्यवस्था में उत्पन्न कर रही है। श्रमिकों के विरुद्ध इस प्रकार का शोर प्रमाण शून्य है और केवल प्रचार साधनों पर पूंजीपतियों के प्रभाव का निर्देशांक मात्र है, जिसका विषद विवेचन अनावश्यक है। संगठित श्रमिकों की शक्ति स्वयं ही अति न्यून है ओर उन क्षेत्रों में भी जहाँ इसने विशेष प्रभाव डाला है हम देखते हैं कि श्रमिकों की वास्तविक मजदूरी में कोई सुधार नहीं हुआ है। यदि हम एक ही उद्योग में क्षेत्र सम्बन्धी मजदूरी के अन्तर और व्यवसाय सम्बन्धी मजदूरी के अन्तरों का परीक्षण करें तो मजदूरी के व्यवहार पर ट्रेड यूनियन आन्दोलन का वास्तविक प्रभाव स्पष्ट हो जावेगा। नेशनल कौंसिल आफ इम्प्लायड रिसर्च इकनामिक्स द्वारा प्रकाशित "वेज डिफरैनसियल्स इन इंडियन इन्डस्ट्रीज" नामक अधुनातन अध्ययन यह प्रदर्शित करता है कि अनेक कार्यों के लिये विभिन्न संस्थानों में मजदूरी का विचलन काफी पाया जाता है। इसी प्रकार न्यूनतम और अधिकतम वेतन वाले कार्यों के बीच अन्तरों को कम करने के प्रति प्रवृत्ति भी पाई जाती है। यह आशा की जा सकती है कि इन परिवर्तनों के निर्देशांक में यूनियन के दबाव का असर पाया जाएगा। परन्तु हम यह स्वीकार करते हैं कि इस सम्बन्ध में हमारे पास अपने या बाहरी श्रोतों से पर्याप्त सूचनायें उपलब्ध नहीं हैं, जिससे इस संदर्भ में कोई दृढ़ वक्तव्य दिया जा सके।

अतः यह ज्ञात किया जा सकता है कि भारत में मजदूरी के निर्धारण पर मजदूरी समझौतों और निर्णयों की रूढ़िवादी रीतियों में अत्यधिक प्रभाव डाला है। सामूहिक सौदेवाजी अत्यन्त लज्जाशील प्रतीत होती है। भृत्तिहीनता एवं न्यूनवृत्ति योजन का विपुल आकार, कृषि एवं असंगठित उद्योग में अकुशल श्रम और मजदूरी की विपुलता ने श्रम बाजार पर विशेष प्रभाव डाला है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था का आत्मनिर्भर प्रकृति के कारण देश में इस बात की आवश्यकता नहीं है कि ये तत्व अधिक समय तक मजदूरी के स्वरूपों को प्रभावित करें। इसके विपरीत यदि पंचवर्षीय योजनाओं में संकल्पित पश्चिमी अनुकृति पर आधुनिक औद्योगीकरण की दिशा में देश को महत्वपूर्ण उन्नति कराने का निश्चय है (एक विचार जो अनेक कारणों से हमें अमान्य हैं) तो प्रतिलोम प्रयत्न आवश्यक होगी, जिससे औद्योगिक श्रमिकों के जीवन निर्वाह स्तरों के ऊपर पिछड़ी हुई अर्थव्यवस्था का खिचाव प्रतिकूल अनुपात में अनुभव न हो सके। परन्तु ये क्षेत्रीय और इसीलिए अपूर्ण विचार है। भारतीय आर्थिक परिस्थितियों में जो सबसे अधिक महत्व की बात है, वह यह है कि भारतीय जनसंख्या के सभी वर्गों के जीवन निर्वाह स्तर को आगे बढ़ाने के लिए ठेलना चाहिए। प्रत्येक श्रमिक की वास्तविक मजदूरी में एक सतत एवं त्वरित सुधार दिखलाई पड़ना चाहिये, और यद्यपि ट्रेडयूनियन आन्दोलन और सामूहिक सौदेबाजी का विकास इस प्रक्रिया की गति को तेज कर देगा परन्तु फिर भी यह आवश्यक नहीं है कि इन तत्वों के विकास की परीक्षा की जाय। जो भी साधन हमें उपलब्ध हैं उनके आधार पर हमें अपनी जनता जीवन निर्वाह स्तरों को एक न्यायपूर्ण रीति से ऊपर उठाना चाहिए।

न्यूनतम मजदूरी

मंदो मध्यस्तथा शीघ्रः त्रिविधो मृत्य उच्यते।
सभा मध्याच श्रेष्ठा च भृतिस्तेषां क्रमास्स्मृता ॥ ९५ ॥
अवश्यपोष्पभरण भृतिर्मध्या प्रकीर्तिता ॥ ८९ ॥
परिपोष्या भृतिः श्रष्ठा समान्नाच्छादनार्थिका।
भवेदेकस्य भरणं यथा सा हीन संज्ञिका ॥ ९० ॥
ये भृत्या हीनभृतिकाः शत्रवस्ते स्वयंकृताः ॥ ९३ ॥

शुक्रनीति अध्याय २

न्यूनतन मजदूरी के सम्बोध की क्रियाशीलता में प्रमुख कठिनाई न्यूनतम मजदूरी की परिभाषा से इतनी अधिक सम्बन्धित नहीं है, जितनी कि उसके वास्तविक परिणाम

एवं निर्धारण में और उससे भी अधिक उसके क्रियान्वयन से है। एक न्यूनतम मजदूरी या भृत्तिक्रम की न्यूनतम दर कानून द्वारा एक मौद्रिक परिमाण के रूप में निर्धारित की जा सकती है, और उसको एक विशिष्ट आधारवर्ष से सम्बन्धित किया जा सकता है। कानून द्वारा निर्धारित न्यूनतम आवश्यकता–आधारित अथवा न्यूनतम मजदूरी के समान सम्बन्धों से कितना समानात्व रखता है यह आज भी एक आलोचनात्मक प्रश्न का प्रश्न है क्योंकि यह सम्बोध अभी स्थिर नहीं हो पाये है। एक्सप्रेस न्यूजपेपर्स (प्रा.) लिमिटेड बनाम यूनियन आफ इण्डिया तथा अन्य (14 F. J. R., A. I. R., 1958 S C 578) नामक मुकदमे में आदरणीय सर्वोच्च न्यायालय ने न्यूनतम, न्यायपूर्ण एवं जीवन निर्वाह मजदूरी (Living wages) के विभिन्न सम्बोधों का बिस्तारपूर्ण वर्णन किया है। उन्होंने देश के संविधान की व्यवस्थाओं का और Fair wage Committee के सुझावों का न केवल विचार किया है, वरन् अन्तर्राष्ट्रीय श्रमी संगठन, आस्ट्रेलिया एवं अमरीका के बुद्धिमान न्यायाधीशों श्रम पर नियुक्त रॉयल कमीशनों, विभिन्न श्रम अनुसन्धान कमेटियों द्वारा समय–समय पर प्रकाशित विवरणों का भी ध्यान रखा है और सरकारों, श्रम संगठनों एवं केन्द्रीय श्रम संगठनों के दृष्टिकोणों को महत्व दिया है। इस प्रकार के एक विशद अनुसन्धान के पश्चात वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि न्यूनतम मजदूरी, न्यायपूर्ण मजदूरी एवं जीवन निर्वाह मजदूरी के शब्द समूहों की अन्तर निहित वस्तु न तो स्थिर है और न ही स्थायी। वह परिवर्तनशील है और समय-समय पर उसमें विचलन होना अवश्यम्भावी है। सामूहिक सौदा व्यवस्था के विकास एवं प्रगति के साथ-साथ जीवन निर्वाह के प्रतिमानों में सुधार किया जायगा और इस कारण मजदूरी की विभिन्न श्रेणियों के सम्बन्ध में हमारे विचारों में प्रसार होगा और वे अधिक प्रगतिशील होंगे।

कदाचित इस बुद्धिमत्तापूर्ण निर्णय पर सुधार करना कठिन है। एक औद्योगिक श्रमिक कार्यकर्ता के लिये न्यूनतम मजदूरी की परिभाषा करना सदैव एक बौद्धिक व्यायाम मात्र रहा है। उसके लिये सीधे महत्व का विषय न्यूनतम दरों के भुगतान के निर्धारण के एवं उनके अवधि के अनुसार विकास के नियमन एवं क्रियान्वयन की रहा है। अतः हमारा यह सुझाव है कि इस प्रश्न के इन व्यावहारिक पक्षों की ओर आगे बढ़ें।

यह निर्विवाद है कि न्यूनतम मजदूरी के कानून को बनाना और उसका पालन कराना अत्यन्त आवश्यक है और उसके क्षेत्र का इतना प्रसार किया जाना चाहिये जिससे समस्त गैर औद्योगिक श्रमिकों को भी सम्मिलित किया जा सके। विभिन्न राज्य

सरकारों ने इस प्रकार के कानून पास किये हैं और उनके क्रियान्वयन के सम्बन्ध में एक काफी दीर्घकालीन अनुभव उपलब्ध हैं। वह स्थिति अभी तक निर्माण नहीं हो सकी है जबकि सम्पूर्ण देश के लिये न्यूनतम मजदूरी के नियमों एवं प्रतिमानों की समानता का प्रयत्न किया जा सके। प्रत्येक राज्य में भी सरकारी नोटीफिकेशन के अनुसार किये गये क्षेत्रानुसार वर्गीकरण अन्तिम स्वरूप प्राप्त कर सके हैं— ऐसा नहीं कहा जा सकता है। इससे भी एक बड़ी कठिनाई श्रमिकों के विभिन्न वर्गों की परिभाषा करने के सम्बन्ध में उत्पन्न हुई है। इन वर्गों को कुशल अर्धकुशल एवं अकुशल जैसे दो या तीन वर्गों में एकत्र कर देना अत्यंत विशाल क्षेत्रीय होगा, जिसके अनेक अर्थ निकाले जा सकते हैं। कदाचित एक संस्थान से दूसरे संस्थान में अथवा एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में विभिन्न वर्गों से सम्बन्धित कार्यों में बहुत अधिक अन्तर पाया जाता है। अतः प्रायः यह देखा जाता है कि कोई भी संस्थान अथवा क्षेत्र जितना छोटा और गरीब होगा उतना ही अधिक उसके श्रमिक को विभिन्न प्रकार के कार्यों से लाद दिया जायेगा और ऐसे संस्थानों में शुद्ध शारीरिक कार्य करने वाले अथवा अकुशल श्रमिक का कोई स्थान नहीं है। साथ ही यह संस्थान अपने सभी प्रकार के कार्यों को करने वाले सहायकों के लिए कुशल या अतिकुशल श्रमिकों की मजदूरी का भार वहन भी नहीं कर सकते। यह सिद्धान्त रूप में तो कहना अच्छा है कि न्यूनतम मजदूरी के परिणाम को श्रमिक की वास्तविक आवश्यकता के अनुसार विभाजित किया जाना चाहिये और वह जो कि उसके अनुसार भुगतान न कर सके उसे अपना व्यवसाय बन्द कर देना चाहिये और उसे अवसर देना चाहिये जो कि ऐसा कर सकते हों। परन्तु जैसे ही हम शहरों से गाँवों की ओर चलें तो हम देखते हैं कि इन आज्ञाओं का पालन करने की कठिनाइयाँ अत्यन्त वास्तविक होती जाती हैं। इस क्षेत्र में समस्त अर्थ व्यवस्था केवल भोजन करने तक जीती है। राष्ट्रीय न्यूनतम के विकास का सम्बोध इन सम्भावनाओं से प्रभावित है और इसी कारण से न्यूनतम मजदूरी के सम्बन्ध में एक अत्यन्त बुद्धिसंगत नीति को ग्रहण करने की आवश्यकता है। न्यूनतम मजदूरी को निर्धारित करने के एक अन्य खतरे पर यहाँ विचार कर लेना आवश्यक है। व्यवहार में यह देखा गया है कि जब किसी क्षेत्र के लिये एक बार न्यूनतम मजदूरी तय कर दी जाय तो वही न्यूनतम, अधिकतम मजदूरी बन जाने की प्रवृत्ति रखती है और अत्यन्त सम्पन्न संस्थान भी अपने कर्मचारियों को वही न्यूनतम मजदूरी देने में संतोष करता है। इससे सामाजिक कानून के एक विशिष्ट अंग को बनाने का उद्देश्य ही पराजित हो जाता है, जिसे जनता के अधिकतम सम्भाव्य कल्याण के निमित्त बनाया गया था।

विभिन्न ट्रेड, क्षेत्रों, पेशों और संस्थानों में न्यूनतम मजदूरी की व्यवस्था के

बनाने में अधिक प्राविधिक प्रयत्नों का किया जाना एक मार्ग हो सकता है। वर्तमान स्थिति यह है कि विभिन्न वर्गों के लिए न्यूनतम मजदूरी की सारणियाँ अथवा नियम तैयार करने में सस्थान की प्रकृति की सर्वथा उपेक्षा की जाती है। यह अनुभव किया जाता है कि पूंजी, विक्रय, लाभ अथवा सेवा नियोजित व्यक्तियों की संख्या इत्यादि के आधार पर संस्थानों का वर्गीकरण करना अत्यन्त आवश्यक है, जिससे न्यूनतम मजदूरी के कानून को जनता के लिये यथार्थ रूप में हितकारी बनाया जा सके। इसी आधार पर न्यूनतम मजदूरी के नियमों को लागू करने के लिये प्रत्येक स्थान या क्षेत्र में ट्रेड को वर्गीकृत किया जाना चाहिये। इसके पश्चात ही यदि उन ट्रेडों में एक पूर्ण प्राविधिक खोज की जाय तो यह ज्ञात होगा कि प्रत्येक इकाई में क्षेत्र एवं संस्थान वर्गीकरण के अनुसार आर्थिक या वित्तीय क्षमता कितनी है। तभी यह सम्भव होगा कि ऐसे प्रकट शोषण को दूर किया जा सके जैसा कि हम बम्बई जैसे विशाल नगरों की अत्यन्त धनवान बाजारों में देखते हैं, जहाँ श्रमिक को अत्यन्त निम्न जीवन पूर्ति स्तर पर कार्य में लगाया जाता है, जबकि लाखों रुपया उसके सामने से बहते हुये पानी के समान बह जाता है। निश्चित रूप से यह सत्य है कि मानवीय श्रम को उसी प्रकार से पुरस्कृत करना चाहिये, जितना भार अर्थ व्यवस्था उठा सके और श्रमिकों की बहुलता एक ऐसा कारण नहीं बनने देना चाहिये जिससे कुछ थोड़े से हाथों में धन का अधिक से अधिक केन्द्रण हो जावे। विशाल और लाभ कमाने वाले संस्थानों के मालिकों को बाध्य किया जाना चाहिये कि वे अपने द्वारा सेवा नियोजित मानवीय श्रम को वह मूल्य दें जो उन श्रमिकों को एक सम्मानप्रद जीवन प्रदान कर सके। इसी प्रकार कर्तव्यों एवं पद भारों का प्रमानीकरण न्यूनतम मजदूरी के नियमों के परिपालन को सार्थक एवं प्रभावी बनाने का एक आवश्यक आधार है। यह कार्य अत्यन्त बड़ा एव कठिन है। परन्तु इस कारण उसको करने में अवरोध नहीं पड़ना चाहिये। वर्तमान स्थिति यह है कि यह कार्य कुछ दुकान एवं संस्थानों के निरीक्षकों के हाथ में है कि वे इसे परिभाषित करें और वर्गीकृत। प्रत्यक्ष प्रवृत्ति यह देखी जाती है कि इन मामलों में राज्य की ओर से कोई उत्साह नहीं दिखलाया जा रहा है वरन् वह तो केवल शिकायतों को ग्रहण करके प्रमाणित करने का भार शिकायत करने वाले पर ही डाल देता है।

इस सम्बन्ध में यह स्वीकार करना होगा कि न्यूनतम मजदूरी का कानून मुख्यतः मिक रूप से अर्थ व्यवस्था के केवल असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों के लाभ के लिये है। इस क्षेत्र में श्रमिकों के प्रति व्यवस्थापकों का अनुपात प्रायः हास्यास्पद ढंग से अधिक होता है। ऐसे असंख्य उदाहरण प्राप्य हैं, जहाँ साहसी के परिवार के प्रत्येक सदस्य का उसके दूर के सम्बन्धी उद्योग में सेवा-नियोजित एक या दो श्रमिकों के अफसर के रूप में कार्य

करते हैं, जिससे व्यवस्थापक-श्रमिक अनुपात २:१ या ३:१ तक ही जाता है। ऐसे मामलों में भी जहाँ अफसरवाद एक प्रकार से अनुपस्थित हो, कर्मचारी सेवा नियोजक के इतने निकट होते हैं कि वे किसी शिकायत का पंजीयन नहीं करवा पाते हैं। दूकानों एवं संस्थानों के निरीक्षक मण्डलों का यह अनुभव है कि जहाँ किसी संस्थान का अत्यन्त प्रताड़ित सेवक निरीक्षक के पास गुप्त रूप से शिकायत करता है, वह प्रायः प्रार्थना करता है कि वह खुले तौर से सामने नहीं आ सकता है, या अपनी शिकायत के लिये प्रमाण उपस्थित नहीं कर सकता है। ऐसी परिस्थितियों में केवल एक अत्यन्त कर्तव्य-निष्ठ निरीक्षक ही नियमों को तोड़ने वाले सेवानियोजक को झूठे क्रेताओं का बुद्धिमानी से प्रयोग करके या सतर्क जाल फैला कर पकड़ सकता है। परन्तु राज्य सरकारों की यह प्रवृत्ति बढ़ रही है कि इस महत्वपूर्ण कार्य को जहाँ सम्भव हो नगर पालिकाओं अथवा अन्य स्थानीय निकायों को सौंप दें, जिसके कारण निरीक्षकों की इस प्रकार की कर्तव्य निष्ठा अब एक अमान्य गुण बनता जा रहा है। ये संस्थायें स्थानीय राजनीति में इतनी फसी हैं कि स्थानीय दूकान एवं संस्थान निरीक्षक अनेक प्रकार के दबावों के फलस्वरूप कोई बीरतापूर्ण, सुविचारित अथवा प्रभावी कदम उठा ही नहीं सकते हैं। वास्तव में कानून एक कल्याणकारी राज्य का गहना मात्र बनता जा रहा है, जिसके आवरण में अनेक निम्नकोटि के उद्देश्य अनवरुद्ध कार्य कर रहे हैं और श्रम का शोषण खुले में निर्लज्ज भाव से किया जा रहा है। एक छोटे संस्थान का सेवानियोजक अनेक ऐसे अवसर पा जाता है जबकि वह अपने कर्मचारी को झगड़े में डाल सकता है और उससे जिस निष्ठा की अपेक्षा करता है, वह उसके वेतन के अनुपात में कहीं भी नहीं ठहरती। इन कर्मचारियों को प्रायः घरेलू कार्यों में भी लगाया जाता है और सम्पूर्ण परिवार को दास श्रमिक समझा जाता है जो कि सेवानियोजक के छोटे बच्चों की भी जंजीर में बंधे होते हैं। इस दासवृत्ति की स्थिति से उनका उद्धार केवल तभी किया जा सकता है जबकि एक सुविचारित एवं अनिवार्य कानून बनाया जाये और उसका भेद रहित एवं कुशल प्रशासन किया जाये। दूकान एवं संस्थान निरीक्षक केवल एक जन-अभियोक्ता होना चाहिये जो शिकायत के उपरान्त शिकायतकर्ता के द्वारा प्रस्तुत तथ्यों एवं प्रमाणों पर कार्य करे वरन् समाज की आत्मा पर दृष्टि रखें और जहाँ भी कानून का उलंघन देखें स्वयं क्रिया को प्रारम्भ करें। तभी न्यूनतम मजदूरी एक यथार्थता बन सकेगी।

ऐसा करने के उपरान्त ही हम भारतीय श्रम कान्फ्रेंस द्वारा सुझाये आवश्यकता पर आधारित न्यूनतम मजदूरी के क्रियान्वयन के लिये एक अनेक वर्षीय परियोजना बनाने का विचार कर सकते हैं। सम्बन्धित विषय पर वर्तमान विचारों के

सुधार करने के लिये बहुत कुछ मिलेगा, यदि हम कान्फ्रेंस द्वारा दी गई न्यूनतम न्याय-युक्त एवं जीवन निर्वाह मजदूरी की परिभाषाओं पर विचार करें। विशेष तौर पर शैक्षिक एवं चिकित्सा सम्बन्धी देखभाल और वृद्धावस्था की आवश्यकताओं के खर्चों को ध्यान में रखकर हम आवश्यकता पर आधारित न्यूनतम का अंग मान सकते हैं और एक परिवार में उपभोग की इकाइयों की संख्या को अधिक बना सकते हैं। जीवन निर्वाह मजदूरी के सम्बोध को एक विकासमान सम्बोध मानना चाहिये, क्योंकि सामान्य मनुष्य की आकांक्षायें, उपयोगिताओं और सेवाओं के एक विशाल क्षेत्र को छूने लगती हैं। परन्तु वर्तमान, आर्थिक परिस्थिति के सन्दर्भ में इस बात की शीघ्र आवश्यता है कि वर्तमान परिभाषाओं पर कार्य किया जाय न कि अनावश्यक शैक्षणिक व्यायाम के आधार पर परिभाषायें बदली जायें।

इस सम्बन्ध में किसी भी कार्यकारी योजना का प्रस्थान बिन्दु विभिन्न क्षेत्रों और समाज के आर्थिक वर्गीकरण के विभिन्न स्तरों से सम्बन्धित श्रमिकों की जीवन निर्वाह एवं कार्य की परिस्थितियों के यथार्थ सर्वेक्षण पर आधारित होना चाहिये। अभी हाल में इस प्रकार के सर्वेक्षण कृषि श्रमिकों, औद्योगिक श्रमिकों और मध्यम वर्गीय श्रमिकों के सम्बन्ध में १९५७–५९ में किये गये थे। यद्यपि उनका प्रकाशन अत्यन्त विलम्बित हो गया है। परन्तु उनका प्रमुख प्रयोग जीवन निर्वाह निर्देशांकों के निर्माण में किया जा रहा है। उनका यह निश्चय ही एक महत्वपूर्ण प्रयोग है जो हमें नगरों और क्षेत्रों के अनुसार जीवन–निर्वाह निर्देशांक प्रदान कर सकता है और विभिन्न नगरों और क्षेत्रों तथा एक ही क्षेत्र में विभिन्न अवधियों एवं जनसंख्या स्तरों के लिए तुलनात्मक मँहगाई के निर्देशांकों के आधार पर न्यूनतम के राष्ट्रीय या राज्यीय अंकों के अथवा अन्य मजदूरियों के मौद्रिक प्रत्यंगों के परिमाण निरूपण अथवा निर्वचन में सहायक हो सकता है। इस सर्वेक्षण का एक अन्य महत्वपूर्ण प्रयोग न्यूनतम मजदूरी की योजना के लिये प्रारम्भिक लक्ष्य निर्धारित करने के लिये और उसके वास्तविक मान को एक निश्चित अवधि के भीतर प्रशासित एवं आश्वासित करने के लिये आवश्यक है। इन सर्वेक्षणों के द्वारा हमें वैयक्तिक एवं पारिवारिक आय-व्यय के स्वरूप का आधार प्राप्त हो सकता है, जिससे हम एक न्यूनतम मजदूरी योजना की ओर प्रस्थान कर सकते हैं। यह सर्वेक्षण हमें एक निश्चित जनसंख्या स्तर के लिये वर्तमान ऋण ग्रस्तता की स्थिति एवं उसके कारणों का ज्ञान प्रदान कर सकता है। न्यूनतम मजदूरी के निम्नतम स्तर का प्रथम लक्ष्य यह हो सकता है कि हम ऐसे पग उठावें कि श्रमिक या उसके परिवार जीवन निर्वाह की वर्तमान आवश्यकताओं की बिना किसी ऋण या उधार लिये पूरा कर सकें। इससे हमारी जनता तात्कालिक चिंता से मुक्त हो जायेगी और जनसंख्या के घनी बनी

की उस पर पकड़ ढीली पड़ जावेगी। इसके साथ ही एक ऐसी योजना को भी उठाना चाहिये जिससे बिना उद्योग की वस्तुनिष्ठ आवश्यकताओं का विरोध किये हुये प्रत्येक संस्थान के न्यूनतम आर्थिक सामर्थ्य का उपयोग किया जा सके, जिसके आधार पर सामान्य श्रमिकों को मौद्रिक लाभों की प्राप्ति निश्चित की जा सके। ये दो पग हमें स्थानीय या अन्य राजनीति से मुक्त कार्यकारी एवं पालक यंत्र का व्यवहारिक आधार प्रदान करते हैं, और भारत में प्रथम क्रान्ति उत्पन्न करेंगे जिसके द्वारा समस्त जनता को कल्याणकारी राज्य की ओर ऊर्ध्वगति प्राप्त होगी। इस योजना के अन्य पग राष्ट्रीय मजदूरी योजना और अर्थ व्यवस्था के लघु श्रेणी क्षेत्र के नियोजन के अंग होंगे।

एक राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी निश्चय रूप से एक अनुकरणीय सम्बोध है और हम सबका यह प्रयत्न होना चाहिये कि जितना शीघ्र सम्भव हो इस सम्बोध को वास्तविकता में परिणित कर सके। परन्तु हमारे देश की परिस्थितियाँ ऐसी हैं कि चाहे हम इच्छा रखें तो भी हमारे लिये यह सम्भव नहीं होगा कि आसाम के पहाड़ी क्षेत्रों जैसे क्षेत्रों के बन श्रमिकों से लेकर विशाल नगरों के क्षेत्रों में काम करने वाले फैक्टरी श्रमिकों तक समान रूप से लागू होने वाली न्यूनतम मजदूरी के निरपेक्ष मान दण्ड से सम्बन्धित अखिल भारतीय नियम बना सकें। इस न्यूनतम को लागू करने में कठिनाई इस बात की नहीं है कि विभिन्न क्षेत्र में उपभोग की आवश्यकतायें भिन्न-भिन्न हैं। इस तत्व का विचार तो क्षेत्रीय जीवन निर्वाह निर्देशांकों के प्रयोग द्वारा किया जा सकता है। कदाचित उस उद्देश्य के निमित्त एक अधिक सही रीति यह होगी कि विभिन्न क्षेत्रों के लिए न्यूनतम मजदूरी निर्देशांक बनाए और रखे जांय, जो हमें एक निश्चित मात्रा में वस्तुओं और सेवाओं के तत्कालीन मौद्रिक समान मूल प्रदान कर सकें। Intuc के स्वर्गीय श्री जी० डी० अम्बेकर न्यूनतम मजदूरी निर्देशांक के एक प्रमुख व्याख्याता थे और इस विषय में उन्होंने जो कुछ भी कहा है वह अर्थपूर्ण है। जहाँ तक निर्देशांक से बंधी हुई न्यूनतम मजदूरी का सम्बन्ध है वह एक अव्यवहारिक धारणा है। महाराष्ट्र राज्य के छपायी प्रेसों में लागू होने वाले नियम और न्यूनतम मजदूरी विधेयक निर्देशांक से बँधी हुई मजदूरी पर आधारित हैं। एक राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी या उसके समान मूल्य के निर्धारण की वास्तविक कठिनाई यह है कि विभिन्न उद्योगों और क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न आर्थिक सामर्थ्य पाया जाता है। न्यूनतम मजदूरी का मुख्य विचार यह होना चाहिये कि वह एक न्याययुक्त न्यूनतम हो, और उसे दिया ही जाना चाहिए, चाहे सेवानियोजक की देय क्षमता कितनी भी हो। यह कानूनी न्यूनतम [illegible]

होना चाहिए जो मानव के जीवन निर्वाह की सभी न्याय सगत आवश्यकताओं की पूर्ति करे। परन्तु यह न्याय संगत आवश्यकतायें क्या हैं और उस समय क्या करना चाहिए, यदि हम कल्पना करें कि कृषि या घरेलू उद्योग में इस प्रकार के न्यायसंगत न्यूनतम को लागू करने के फलस्वरूप एक विशाल मात्रा में बेरोजगारी फैल गई हो ? इस प्रश्न को व्यवहारिक दृष्टिकोण से इस प्रकार से हल किया जा सकता है कि न्यूनतम मजदूरी के वर्गीय मानदंड निर्धारित कर दिए जांय, और उसको नगरीय और ग्रामीण दो प्रत्यंगों में बांट दिया जाय। नगरीय क्षेत्रीय ग्रामीण क्षेत्रीय न्यूनतम का निश्चय करने से पूर्व क्षेत्र की परिभाषा स्थिर की जानी चाहिए। इस सन्दर्भ में हम यह कहना चाहेंगे कि सांख्यिकी संस्थाओं द्वारा किया गया वर्तमान क्षेत्रीय वर्गीकरण श्रम कानून के लिये स्वीकार नहीं है। इसके लिए मौलिक चिंतन आवश्यक है। यह एक विशेषज्ञ अनुसन्धान का विषय क्षेत्र है। परन्तु यह अत्यन्त प्रछन्न है कि क्षेत्रीय वर्गीकरण उद्योग की प्रकृति, प्रयुक्त प्राविधि के स्तर और व्यवसाय के अंतिम प्रतिफलों पर आधारित किया जा सकता है। न्यूनतम मजदूरी के उच्चस्तरों के लिये प्रत्येक संस्थान के अनुसार कार्यशील पूँजी, संस्थान के आकार, कर्मचारियों की संख्या इत्यादि के आधार पर आगे किया जा सकता है। भारतीय मजदूर संघ की एक यूनियन ने देहरादून में सिलाई स्थानों से एक सफल समझौता किया है, जिसके अनुसार विभिन्न संस्थानों द्वारा एक सूट की सिलाई के लिए फर्म के अनुसार मजदूरी का एक मान्य निश्चित कर दिया गया है। इस प्रकार के विभेदी करण ने विभिन्न ख्याति वाले संस्थानों की कुशलता एवं निपुणता के अंशों का भी पूर्ण सत्कार किया है। उपरोक्त वर्णन में यह स्पष्ट देखा जा सकता है कि यद्यपि हम सभी देशों, उद्योगों और क्षेत्रों के लिए समान राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी की सम्भावना की संकल्पना नहीं करते हैं, परन्तु हम यह भी अनुभव नहीं करते कि इस विषय के बिना किसी दृढ़ राष्ट्रीय निर्देशन के, राज्यों पर ही छोड़ दिया जाय। न्यूनतम मजदूरी के प्रतिमानों का यह सम्बोध विकासमान देशों के लिये अतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन द्वारा प्रस्तावित अधुनातन सूत्र से कुछ-कुछ मेल खाता है। इस सत्र में संकल्पना की गई है कि एक प्रतिनिधि कृषक खेतिहर के जीवन निर्वाह स्तर को आधार मानना चाहिए और उसके लिए निर्धारित न्यूनतम मजदूरी के लिये निम्न स्तर से औद्योगिक मजदूरियों का समायोजन किया जाना चाहिये। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की विशेषज्ञ समिति के विचार से यदि एक खेतिहर के जीवन निर्वाह स्तर को आधार माना जाय और औद्योगिक श्रमिक को उसकी तुलना में समायोजित मजदूरी दी जाय तो आशंका यही है कि दोनों स्तर एक दूसरे से दूर नहीं होंगे। हम अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के इस वाद के विचार से सहमति नहीं है और न यह उनके प्रस्ताव का एक सहकारी और

आवश्यक प्रतिफल ही माना जा सकता है। हमारा यह दृढ़ मत है कि न्यूनतम मजदूरियों के क्षेत्रीय प्रतिमानों को निर्धारित किया जा सकता है और उनमें अन्तर भी रह सकता है क्योंकि ऐसा न होने पर सभी क्षेत्रों में न्यूनतम श्रमिकों को अति निम्न स्तर पर बांध देगी। यदि कृषि क्षेत्र किसी विशिष्ट समय पर एक उच्च न्यूनतम दे सकता है तो यह आवश्यक नहीं है कि वह उस समय तक प्रतीक्षा करे जब तक औद्योगिक क्षेत्र में वृद्धि नहीं होती, क्योंकि सभी क्षेत्रों में समान रूप से आनुपातिक विभेदमूलक स्थिर अंक को स्थिर रखते हुए सभी क्षेत्रों में ऊर्ध्व संशोधन नहीं हो जाता। इसके साथ ही हम यह अनुभव नहीं करते हैं कि औद्योगिक क्षेत्र की न्यूनतम मजदूरी को निम्न स्तर पर बांधा जाय। केवल इसी कारण से क्योंकि प्रतिनिधि कृषक खेतिहर आज भी अपने न्यूनतम जीवन निर्वाह स्तर पर चल रहा है। विकास प्रक्रिया की असमानता स्वयं में ही एक कारण है जो क्षेत्रीय न्यूनतमों की आवश्यकता की पुष्टि करता है।

भारतीय परिस्थिति के सन्दर्भ में एक न्यूनतम मजदूरी विधेयक के प्रयोग से संबन्ध में एक अपवाद यह होगा कि आर्थिक आधार के अतिरिक्त आधार ढूंढना पड़ेगा। भारत ही एक ऐसा देश है जहां जीवन के लिए आर्थिक अभिप्रेरण को उच्च सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा जाता है। इस देश का सबसे अधिक हित उन महान त्यागी व्यक्तियों के दल ने किया है जिन्होंने धन अथवा भौतिक आवश्यकताओं की कभी चिन्ता नहीं की। उनके लिये जीवन की आवश्यकता जैसी वस्तु कोई नहीं है वरन् वे तो वायुमण्डलीय तत्वों के स्वयं स्वामी हैं। न्यूनतम मजदूरी का कोई विधेयक अथवा कोई भी श्रम कानून इस पवित्र और समाज सेवा के उच्च विचार के अवरोध, विलम्ब अथवा ध्वंस का कारण नहीं बनने देना चाहिये, जिसमें किसी मौद्रिक पुरस्कार की परवाह नहीं की जाती और न ही इस पृथ्वी से किसी भौतिक सुविधा की अपेक्षा की जाती है। ऐसे व्यक्ति किसी भी वस्तु पर निर्भर नहीं होते है (निरावलंब) और ऐसे दासता का स्वरूप देना अथवा कानून द्वारा निर्धारित एक न्यूनतम मजदूरी को स्वीकार करने के लिये बाध्य करना एक ऐसा कार्य होगा जो समाज से उस जीवन-प्रदान के विशाल स्रोत को छीन लेगा जिसे परमेश्वर के सच्चे सपूत अपने उदात्त जीवन से उत्पन्न करते हैं। वे समाज की ध्वजा लेकर चलने वाले व्यक्ति होते हैं इसी लिये उन्हें किसी भी श्रम कानून की बाध्यता से मुक्त कर देना चाहिये, जो लाभ प्रदान करता हो अथवा अवरोध लगाता हो। उनके लिये बहुजन हिताय के मानदण्ड नहीं होते। वे तो स्वयं ही एक आदर्श होते हैं जिसकी ओर दूसरों को स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिये सब कुछ बलिदान करके स्वतः बढ़ना चाहिये। किसी प्रकार के व्यक्ति अपने ऊपर कोई कार्यभार डाल लें, चाहे एक अध्यापक, प्रोफेसर,

समाचारपत्र सम्पादक अथवा सामाजिक कार्यकर्ता इत्यादि का स्वरूप ग्रहण कर ले तो उन पर कोई श्रम कानून नहीं लागू किया जाना चाहिये। इस प्रकार के आन्तरिक गुणों की मान्यता के लिये किसी भी वाह्य प्रक्रिया को निर्धारित करते समय एक कठिनाई निश्चित रूप से सामने आवेगी। ऐसे व्यक्ति ऐसे श्रमिकों के ही वर्ग में कार्य कर रहे हो सकते हैं जिनके लिये न्यूनतम मजदूरी का निर्धारण आवश्यक हो। केवल एक ही मार्ग है कि ऐसे व्यक्तियों के लिये यह अवसर दिया जाना चाहिये कि समय-समय पर वे स्वतः घोषणा कर सकें कि वे साधारण श्रमिको को लागू होने वाले प्रतिमानों से शासित होना नहीं चाहते हैं। ऐसी स्वेच्छा से की गई घोषणा को कानून की सीमायें निश्चित करने के लिए समुचित आधार माना जा सकता है। फलतः एक ही संस्थान में कार्य करने वाले जैसे किसी सामाजिक सेवा संस्थान में कार्य करने वाले कुछ सदस्य औद्योगिक कानून से शासित होंगे, परन्तु उन्हीं के कुछ सहयोगी ऐसे नहीं होंगे जिन्होंने स्वतः बाहर रहना स्वीकार किया हो और उन्हें न्यूनतम मजदूरी जैसे किसी भी औद्योगिक कानून के निमित्त औद्योगिक श्रमिक नहीं माना जाना चाहिये। कार्य के घंटों, अतिरिक्त कार्यावधि, प्राविडेंट फंड इत्यादि के लिये आर्थिक एवं गैर आर्थिक अभि-प्रेरणा से कार्य करने वाले विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों का सहअस्तित्व न केवल व्यवहार्य माना जाना चाहिये वरन् उसे मानवीय प्रगति का प्रेरणादायक प्रतीक मानना चाहिये जो अन्तिम लक्ष्य के रूप में राज्यहीन समाज तक पहुंचा देगा।

महँगाई भत्ता

यह एक ऐसा विषय है जिस पर वर्तमान समय में अत्यन्त गर्म वातावरण उत्पन्न हुआ है और आज भी बिना किसी कमी के चल रहा है। भारत में मूल्यों की प्रगति ने एक सीधी ऊर्ध्व गति का प्रमाण दिया है और वह जनता के सभी वर्गों के लिये कठिनाइयां उत्पन्न कर रही हैं। इस सम्बन्ध में ऐसे श्रमिक जिनकी तुलनात्मक दृष्टि से स्थिर आय है सर्वाधिक हानि उठाने वालो में से हैं। वे पूर्ण रूप से देश के औद्यो-गिक संस्थानों पर अपने जीवन निर्वाह के निमित्त निर्भर हैं। उनकी मजदूरियां, कुछ अत्यंत दुर्लभ अपवादों को छोड़ कर, उत्पादन अथवा उत्पादकता के आधार पर निर्धारित नहीं होती है और न हीं वे स्वयं सेवा नियोजित क्षेत्र के समान अपनी वस्तुओं अथवा सेवाओं का मूल्य खुले बाजार में तय कर सकते हैं। इस प्रकार वे आकाश छूते मूल्यों के सहायताहीन लक्ष्य बन जाते हैं। जीवन की इन प्रतिकूलताओं की आंशिक प्रतिक्रिया के रूप में उन्होंने विरोध में अपनी आवाज उठाने का यत्न किया है और मूल्यवृद्धि की क्षतिपूर्ति के रूप में महँगाई भत्ता की मांग की है। यह महँगाई भत्ता की

व्यवस्था युद्धकालीन अर्थव्यवस्था की खुमारी के रूप में जीवित है और केवल भारत एवं पाकिस्तान की विशिष्टता है। मँहगाई भत्ता के लिये श्रमिकों की माँग जीवन निर्वाह निर्देशांक के आधार पर शत-प्रतिशत प्रभाव-निरसन की अत्यन्त प्रगट है। आधुनातन काल में जीवन निर्वाह निर्देशांकों के निर्माण की भ्रमपूर्ण प्रणाली के सम्बन्ध में भी विरोध उत्पन्न हुआ है यद्यपि उनमें से कुछ का संशोधन किया गया है परन्तु १९५८–५९ के पारिवारिक आय व्यय के अनुसन्धान के आधार पर उनके बनाये जाने के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण बदल पर आज भी सरकार विचार कर रही है। वास्तव में सांख्यिकीय समंकों के इस अति महत्वपूर्ण भाग के सम्बन्ध में सरकार द्वारा देरी और गोपनीयता अत्यन्त रोष कारक है। इस समय तक हमें १९६८–६९ के परिवार जीवन निर्वाह सवक्षण के निमित्त तैयार होना चाहिये था परन्तु दुर्भाग्य से अभी तक हम इस शताब्दी के द्वितीय एवं तृतीय दशकों की पंगु उपभोक्ता मूल्य निर्देशांको की समंकमाल से मुक्त नहीं हो सके हैं। सरकार निश्चय ही श्रमिकों को प्रत्येक प्रकार की उत्तेजना का कारण प्रदान कर रही है जो कि मूल्य वृद्धि के अत्यन्त भावप्रवण प्रश्न और उसके प्रभाव निरसन से सम्बद्ध है। यहां तक कि केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों के मंहगाई भत्ता निर्धारण सिद्धान्तों पर अधुनातन खोज ने प्रकट रूप से तृतीय वेतन आयोग के सामने उपस्थित प्रश्नों के अधिकतम भाग को विलम्बित कर दिया है। इसके अतिरिक्त श्रमिकों से कहा जाता है कि वे एंड-हॉक सुविधाओं से सन्तुष्ट रहें जिनके अनुसार मँहगाई भत्ता में वृद्धियां दी जाती हैं परन्तु जो परिस्थिति का सामना आधी दूरी तक भी नहीं करतीं।

यह एक आश्चर्य की बात होती यदि इन परिस्थितियों में पूर्ण प्रभाव निरसन की उपयुक्तता या अनुपयुक्तता के सम्बन्ध में विभिन्न सिद्धान्तों का प्रतिपालन न किया होता। वर्तमान आर्थिक स्थिति में मूल्य–मजदूरी–मूल्य के चक्र से सम्बन्धित पुराने सम्बोधों को धार्मिक सत्य मान कर प्रयुक्त किया गया है और उनकी समुचितता की कोई परीक्षा नहीं की गई है। यहां तक भी कहा गया है कि आर्थिक विकास के हितों की रक्षा के लिये श्रमिकों की यथार्थ मजदूरियां नीची होनी चाहिए। इस शील जनता के सम्बन्ध में लेखकों द्वारा ऐसे मत प्रकट किये जाते हैं जो उन्हें बहते हुए निम्न करों, उच्च लाभों और धनिकों को अन्य प्रेरणायें जिससे वे अपने कोषों को विनियोजित कर सकें और पूँजी निर्माण में गति ला सकें, की भी देते हैं तो मानवीय प्रेरणा के उस सम्बोध के विषय में आश्चर्य होने लगता है जिसने इन योग्य सिद्धान्तवादियों को चालना दी है। यहां तक कि सरकार भी जो अपने राष्ट्रीय गुण के रूप में बचत करने के लिये कहती है ऐसा देखा गया है कि वह

उद्देश्यों के लिये केवल अपने अहं को पूर्ण करने के लिये अथवा स्वय गद्दी पर बने रहने के लिये करोड़ों रुपया बर्बाद करती है। परन्तु राष्ट्र इस समस्या की अवहेलना अब अधिक दिन तक नहीं कर सकता है। औद्योगिक मोर्चे पर किसी दृढ एवं प्रोत्साहन देने वाले पग को उठाने से पूर्व इस समस्या का समाधान एक निरपेक्ष आवश्यकता है। इस वर्ष अच्छे मानसून के होने पर इस कठिन समस्या का सदैव के लिए निराकरण करने के निमित्त एक विशेष सुविधा प्राप्त हुयी है क्योंकि इस प्रश्न के दीर्घकालीन पहलुओं पर विचार करना सरकार के लिये अब सम्भव होगा यदि इस समृद्धि के वर्ष में खाद्यमूल्यों पर नियन्त्रण करके सरकार सापेक्षिक मूल्य स्थिरता का वातावरण बना सकती है।

मँहगाई भत्ते का प्रश्न एक सर्वग्राही प्रश्न है और इकाई के स्तर पर सौदेबाजी पर उसका समाधान छोड़ देना घोर पलायनवाद होगा। इस सम्बन्ध में मूल्य प्रवृत्तियों को प्रभावित करने वाले मुख्य तत्वों से सही सिद्धान्तों और प्रतिमानों के प्रयोग द्वारा निपटा जा सकता है। कठिनाई इतनी अधिक प्राविधिक नहीं है जितनी कि राजनैतिक। इस सम्बन्ध में ग्रेट ब्रिटेन के द्वारा किया गया अध्ययन प्रश्न की सभी प्राविधिक दृष्टिकोणों से विशद व्याख्या करता हैं। यद्यपि वह देश अपनी मूल सुनियोजित नीति को पूर्ण रूप से साकार इसलिये नहीं कर सका है क्यों कि उसकी अन्तर्राष्ट्रीय व्यवसाय पर अत्यधिक निर्भरता है। यह उदाहरण केवल विकसित देश पर ही लागू नहीं होता वरन विकासमान देशों पर भी लागू होता है। उसके अन्तर्गत प्रस्तावित समाधान आर्थिक व्यवहार के अधिक स्थायी सिद्धान्तों पर आधारित है। इस विषय का प्रमुख विचार उत्पादकता, मूल्य और आय सम्बन्धी उद्देश्य पर सरकार द्वारा प्रकाशित एक संयुक्त वक्तव्य में अनुवद्य है जिसे ब्रिटिश उद्योग के दोनों ही पक्षों के प्रतिनिधियों की सहमति प्राप्त थी। उद्देश्य के वक्तव्य के दोनों ही पक्षों की सहमति थी कि वास्तविक आर्थिक उद्भव, जिसमें मूल्य स्थिरता भी हो, का मार्ग राष्ट्रीय उत्पादकता की औसत वृद्धि के आधार पर औसत वेतन वृद्धियों को परिसीमित करना है। इस वक्तव्य में वार्षिक वेतन वृद्धियों के मान दण्ड उल्लिखित थे। और साथ ही उन आधारों का भी उल्लेख था जिनमें अपवाद किये जा सकते हों। इसके पश्चात ही मूल्यों और आयों के राष्ट्रीय बोर्ड का गठन किया गया जिसका कार्य यह था कि सरकार द्वारा संदर्भित विशिष्ट मजदूरी की माँगों अथवा मूल्य वृद्धियों के सम्बन्ध में अनुसंधान करे और निर्णय करे कि क्या वे राष्ट्रीय हित में हैं। इस राष्ट्रीय बोर्ड को मामले सौंपने के व्यवहार की पूर्ति के रूप में एक ऐसी व्यवस्था बनाई गई जिसके अनुसार मूल मजदूरी और मूल्य वृद्धियों के सम्बन्ध में पूर्व चेतावनी दे दी जाय। इसके कारण बिना में एक

बहुत ही प्रभावी ढंग से ट्रेड यूनियन कांग्रेस की जनरल कौंसिल का प्रवेश हो गया। इस पग के द्वारा प्राकृतिक ढंग से ब्रिटिश ट्रेड यूनियनों के भीतर केन्द्रीय सत्ता के एक अंश का प्रवेश हुआ जिसने श्रमिकों के लिये यथार्थ रूप में मूल्य बृद्धि सुनिश्चित कर दी। मँहगाई भत्ते की व्यवस्था को श्रमिक विश्व भर में कहीं भी पसन्द नहीं करते। भारत में यह प्रश्न उठाया भी नहीं जाता यदि स्थिर मूल्य स्तर का वातावरण पाया जाता। वास्तव में श्रमिक अपने जीवन निर्वाह स्तर को यथार्थ मजदूरी में बृद्धि द्वारा उठाना चाहते हैं। एडहॉक मौद्रिक बृद्धियाँ जो मूल समस्याओं को छूती ही नहीं हैं निश्चय ही भ्रमोत्पादक हैं। श्रमिक किसी भी औद्योगिक सम्बन्ध अथवा औद्योगिक नीति की व्यवस्था में पूर्ण सहयोग देने के लिए कटिबद्ध हैं जो कि उनके लिए उनकी मजदूरी की मूल वस्तु में निश्चित बृद्धि कर सकें।

भारतीय परिस्थिति में वास्तविक संकट यह है कि प्रचार के साधन अत्यधिक रूप से पूँजीपतियों और सरकार के हाथों में हैं और उन्होंने भारतीय श्रमिक की एक झूठी प्रतिमा खड़ी कर दी है। यह कल्पना कर ली जाती है कि भारतीय श्रमिक उत्पादकता के प्रति कोई झुकाव नहीं दिखलाता और केवल अपनी मांगों और अधिकारों की जिद करता है। यह विचार पूर्ण के लिये केवल एक अर्ध सत्य की प्रतिस्थापना है। नियंत्रण उद्योग के सर्वोच्च स्थानों पर नियुक्तियाँ यह दिखलाती हैं कि भारतीय उद्योग और यहाँ तक कि लोक उपक्रम भी आज भी एक पारवारिक समझे जाते हैं जो कि जन्म या राजनैतिक सम्बन्धों के आधार पर चलते हैं। भारतीय सेवा नियोजक का यदि झुकाव यदि उत्पादकता की ओर होता तो हमें आज के क्रियाशील व्यवस्था की अपेक्षा अधिक योग्य व्यवस्था प्राप्त हो जाती। सरलता से प्राप्त होने वाली मुद्रा की अधिकता, उत्पादित वस्तुओं में मिश्रण के द्वारा लाभ का छल साधन, सस्ते विज्ञापन द्वारा बाजारों को जीतना, एकाधिकारी विक्रय अथवा फुटकर बचतों की व्यवस्था द्वारा लाभ का छल साधन इत्यादि बहुत अधिक देखने में आता है। भारतीय उत्पादन के लिये आज भी गुण अथवा लागतों के सम्बन्ध में नाम कमाना आज भी शेष है और इससे भारतीय उद्योग का सम्मान किसी भी प्रकार से नहीं बढ़ता है। वास्तविक तथ्य यह है कि प्रतिष्ठित व्यवस्थापक क्षेत्रों में केवल उत्पादकता के सम्बन्ध में अत्यधिक चर्चा ही होती है। किन्तु यह ज्ञात नहीं है कि पूँजीपति जो कि सम्पूर्ण प्रकिया को पूँजी प्रदान करता है और अन्ततः नियन्त्रित करता है, विषय को जानता है अथवा नहीं। यही स्थिति मन्त्रियों और संसद सदस्यों की है जो कि कार्यों के आकलन पर निर्णय देने के लिये बैठे हैं। नौकरी करने वाले व्यवस्थापिकों का एक छोटा सा वृत्त ऐसा है जो मंच पर अत्यन्त सलज्ज अवतरण कर रहा है और वैज्ञानिक व्यवस्थापन में कुछ रुचि ले रहा है। मूलतः

के चक्र से संघर्ष करने का उत्पादिकता के माध्यम से प्रयत्न केवल वह छोटा सा वर्ग कर रहा है जो श्रमिकों के लिये कोई भी आश्वासन प्रदान करने में असमर्थ है। वास्तव में भारतीय श्रमिक का सामना किसी ऐसे यथार्थ चैलेन्ज से नहीं हुआ है जिससे वह खेल में अपने भाग्य का निर्णय कर सके। उसे त्याग और बचत करने की सलाह की खुराक दी जाती है। अत्यन्त गिरी हुई और निम्न जीवन निर्वाह की स्थिति में यह आश्चर्य नहीं करना चाहिये कि वह धनिकों द्वारा गरीबों को दी जाने वाली खोखली सलाहों पर ध्यान देने का मन रखें। उनके पीछे दबाव डालने वाली कोई भी शक्ति भी नहीं हैं।

इसके विपरीत भारत में जो भी श्रम समंक उपलब्ध कराये गये हैं, वह दिखाते हैं कि भारतीय श्रमिक को उत्पादकता के लाभों में कोई भी भाग नहीं दिया जाता है। उदाहरणार्थ : उत्पादन के मासिक आँकड़ों और इण्डियन लेवर जर्नल के अंकों के आधार पर बनाई गई निम्नलिखित सारिणी उपरोक्त वक्तव्य की प्रमाणिकता सिद्ध करती है :—

वास्तविक प्रतिमानों में श्रम उत्पादकता के निर्देशांक (१९५१=१००)

वर्ष	औसत प्रतिदिन रोजगारी का निर्देशांक	केवल औद्योगिक उत्पादन में निर्माण का निर्देशांक	निर्माण में वास्तविक प्रतिमानों के आधार पर श्रम-उत्पादकता का निर्देशांक	वास्तविक आयों का निर्देशांक
१	२	३	४	५
१९५१	१००.०	१००.०	१००.०	१००.०
१९५२	९९.०	१०३.०	१०४.०	१०१.३
१९५६	१०६.७	१३७.२	१२८.६	११५.४
१९६०	११७.३	१७५.३	१४९.४	१२३.८
१९६१	१२२.१	१८५.१	१५१.१	१२५.५
१९६२	१२८.०	२०१.१	१५७.१	१२६.५
१९६३	१३६.०	२१६.२	१५९.०	१२९.०
१९६४	१४२.६	२३३.५	१६३.७	१३२.१

(स्रोत : भारतीय श्रम जर्नल, भारतीय श्रम सांख्यकी, १९६६ सारणी ४.२ तथा भारत में चुने गये उद्योगों के उत्पादन के मासिक आँकड़े, अक्टूबर १९६५)

२०० रु० प्रति माह से कम आय पाने वाले कर्मचारियों की आय के निर्देशांक दिखलाने वाली एक सारिणी भारतीय श्रम सांख्यकी १९६६ में दी गई है और उसकी प्रवृत्ति का भी समर्थन करती है। यह सारिणी निम्नलिखित है :—

(आधार १९५१ = १००)

वर्ष	मौद्रिक आयों के निर्देशांक	अखिल भारतीय उपभोक्ता मूल्य निर्देशांक	वास्तविक आयों के निर्देशांक
१	२	३	४
१९५२	१०७.१	९८.१	१०९.२
१९५५	११३.१	९१.४	१२३.७
१९६०	१३४.४	११८.१	[illegible]
१९६१	१३८.६	१२०.७	[illegible]
१९६२	१४४.०	१२३.८	[illegible]
१९६३	१४५.२	१२७.६	[illegible]
१९६४	१४८.७	१४४.८	१०२.७

कदाचित यह सम्भव हो सकता है कि श्रम उत्पादकता की वृद्धियाँ [illegible] सारिणी में दिखाई गई हैं पूर्ण रूप से नहीं अंशतः अधिक पूँजी नियोजन [illegible] हों। परन्तु फिर भी यह भूला नहीं जा सकता है कि पूँजी विनियोग को यह [illegible] भी धनवान व्यक्तियों के द्वारा की जाती है जोकि उनको और अधिक धनवान [illegible] और कोई भी प्रयत्न नहीं किया जाता जिससे श्रम को भी हिस्सा मिल सके। [illegible] समान देश ने भी श्रमिकों को एक उच्च स्थान और व्यवस्थापना में हिस्सा [illegible] है। भारत के श्रमिक वास्तव में एक से अधिक प्रकार से विकल हैं। [illegible] प्रभावित करने में उनका कोई हिस्सा नहीं है। जैसा कि उपरोक्त आंकड़ों से [illegible] (और १९६४ के पश्चात प्रवृत्ति की और खराब होने की सम्भावना है) [illegible] दकता में मिलने वाला कोई भी हिस्सा नहीं दिया जाता। कुछ थोड़े से [illegible] पर धन में वृद्धि हो रही है, परन्तु श्रमिकों की वास्तविक मजदूरियाँ नीचे जा [illegible] और फिर भी उन पर यह आक्षेप लगाया जा रहा है कि वे अर्थ व्यवस्था में [illegible]

प्रेरित मुद्रा स्फीत उत्पन्न कर रहे हैं। श्रमिकों के लिए यह एक असह्य परिस्थिति है जिसका सामना वीरता से करना चाहिये। विश्वास करने के लिए कोई भी प्रमाण इस प्रकार का प्राप्त नहीं है जिससे कि यह माना जा सके कि भारतीय अर्थव्यवस्था में लागत प्रेरित मुद्रास्फीत है। भारतीय श्रम पर इस सम्बन्ध में सबसे अधिक तीव्र आक्रमण पैन्सिलवेनिया विश्वविद्यालय के एक विदेशी प्रोफेसर सिडनी वीनट्राव ने किया है। "बिना मुद्रा स्फीति के विकास" नामक रिपोर्ट में उक्त प्रोफेसर ने भारतीय मुद्रास्फीति की स्थिति को मौद्रिक मजदूरियों और श्रम उत्पादकता के बीच एक असन्तुलन के रूप में स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। परन्तु उसी रिपोर्ट की प्रस्तावना में नेशनल कौंसिल ऑफ एप्लायड एकनोमिक्स रिसर्च के डायरैक्टर जनरल डा० पी० एस० लोकनाथन ने अंगुलि निर्देश किया है कि इस प्रकार से विचार करने की अनेक गम्भीर परिसीमायें हैं। उन्होंने यह स्पष्ट किया है कि मुद्रास्फीत किस प्रकार से सामान्यतः एक मिश्रित घटना है और प्रमुख दोषी के रूप में किसी भी अकेले तत्व को पकड़ पाना अत्यन्त कठिन है। केन्द्रीय श्रम मन्त्रणालय ने इस विचार के विरोध में कहकर अच्छा कार्य किया है कि Wage board के निर्णयों के क्रियान्वयन से सम्बन्धित उद्योगों द्वारा उत्पादित वस्तुओं की लागतें और मूल्य विशेष रूप से बढ़ें। इस प्रकार का श्रम मन्त्रणालय का अध्ययन जोकि अक्टूबर १९६७ की Standing labour Committeey की मीटिंग के लिए एक टिप्पणी के रूप में तैयार किया गया है, अपने प्रकार का प्रथम है और यदि भविष्य में उसी प्रकार के अध्ययन किये गये तो वे हमें भारतीय आर्थिक स्थिति का एक वास्तविक चित्र प्रदान कर सकेंगे। किसी भी अवस्था में यह तो स्पष्ट है ही कि भारतीय श्रमिक तेजी से बढ़ते हुए मूल्यों के सन्दर्भ में तेजी से अपनी वास्तविक मजदूरी को गँवा रहा है और वास्तविक मजदूरी के लिये पूर्ण सुरक्षा की उसकी मांग के पीछे सभी नैतिक और आर्थिक समर्थन हैं। मँहगाई भत्ते की नीति को वास्तविक मजदूरी की सुरक्षा जैसे आधारभूत विचार पर बनाया जाना चाहिये।

अतः किसी भी कीमत पर किसी भी श्रमिक की वास्तविक मजदूरी को संशोधित जीवन लागत निर्देशांक के अनुसार शत प्रतिशत प्रभाव निरोधन की अपेक्षा सारा लाभ ही कम करने में कोई न्याय संगत उक्ति नहीं है। जनता के जीवन निर्वाह स्तरों को सुधारने का राष्ट्रीय लक्ष्य पूर्ण रूप से पराजित हो जावेगा यदि शत प्रतिशत प्रभाव निरोधन में एक प्रतिशत कम भी प्रतिमान स्वीकार कर लिया जाय क्योंकि सारा प्रयत्न वास्तविक मजदूरी को बढ़ाने के लिये होना चाहिये न कि उसे करने के लिये। ऐसा करने का तर्क उत्पादकता के लाभों को वितरित करना है। भारत में प्राप्त आंकड़े यह बतलाते हैं कि परिस्थितियों का न्याय यही है कि भारतीय श्रमिक की वास्तविक मजदूरी में वृद्धि की

जाय । परन्तु ऐसा हुआ नहीं है । उसके अतिरिक्त सबसे खराब बात यह है कि वास्तविक मजदूरियों एवं उत्पादकता के बीच कोई सुविचारित सम्बन्ध नहीं स्थापित किया गया । श्रम को बलि का बकरा बनाया जा रहा है और उसकी निम्न जीवन निर्वाह स्तर के प्रति कोई चिंता न करते हुए उस पर सारे दोष लादे जा रहे हैं । प्रायः उसकी सुरक्षा और विकास की प्राथमिकताओं की बात की जाती है परन्तु वास्तव में यह उसकी वास्तविक मजदूरी को कम करने के लिये कोई तर्क नहीं माना जा सकता । सुरक्षा पर व्यय जनकोष से करों के माध्यम से प्राप्त होता है । किसी ने भी मँहगाई भत्ते में शत प्रतिशत प्रभाव निरसन के तर्क समर्थन करते हुए प्रत्यक्ष करों के समाप्त किये जाने का प्रश्न नहीं उठाया है । ऐसी कल्पना की जाती है कि उद्योग और व्यापार की आर्थिक सुव्यवस्था से प्रत्यक्ष कर बढ़ सकते हैं । उन्हें लागत समझा जाता है जोकि उद्योग के फलों के प्रति श्रमिक की माँग होने से पहिले ही उत्पादकता के लाभ चुपचाप खा जाते हैं । मँहगाई भत्ते के मूल्य प्रभाव निरशन को कम करने के लिये उसे पुनः चित्र में लाना नहीं चाहिए, इसी प्रकार से विकास की आवश्यकताओं को भी वास्तविक मजदूरियों को कम करने का कारण नहीं बनाना चाहिए । सभी विकास सम्बन्धी वित्तीकरण के लिये दृढ़ सिद्धान्त यह है कि उसकी प्राप्ति उद्योग के उत्पादकता लाभों के विनियोग से होना चाहिये । अतः हम पुनः उसी टालू और राजनैतिक व्यवहार के सामने पहुँच जाते हैं जो कि उत्पादकता के प्रति किया जा रहा है उसे व्यवस्थापिकों के एक प्रचार साधन के रूप में और बिना किसी गम्भीर और कार्यकारी प्रस्ताव के जिससे श्रम की उन्नति हो सके । यद्यपि इसे स्वीकार कर लिया जाय । जबकि यह आवश्यक नहीं है कि विकास सम्बन्धी प्रयत्नों का प्रवाह चालू परित्यागों के मध्य से होना चाहिए तो भी ऐसा कोई कारण नहीं है कि यह परित्याग गरीब श्रमिकों के द्वारा किया जाय जो कि उपभोग व्यय पर पूँजी को इसलिये आकर्षित करें कि उसे भावी उद्योगों में लगाया जा सके । जहां तक राष्ट्रीय मांगों का प्रश्न है पूँजी और श्रम दोनों ही उनके आधीन होने चाहिए और कल्याणकारी समाज की साधारण आवश्यकता यह है कि जो भी अधिक के लिये अधिक सशक्त हों उसे खेल में छूट नहीं दी जानी चाहिये । यदि बिना आकर्षण के पूँजी आगे आने में सलज्ज हो तो उसे राष्ट्रीय हल में अवश्य देना चाहिए । जहां तक राष्ट्रीय हितों का प्रश्न है उनकी तुलना में निजी को पवित्र नहीं माना जा सकता । दूसरी ओर पूँजी निर्माण और विनियोग की भावी योजनायें श्रम के नाम पर साथ-साथ चल सकती हैं । यदि राष्ट्र निर्णय करता है कि विनियोग की दृष्टि से उद्योगों में एक निश्चित विकास की दर रखी जाय और यदि इस दर को प्राप्त करने में श्रम के उपभोग में कटौती करनी पड़ी तो ऐसा करने के लिए श्रमिक को अपने उद्योग में अंश प्रदान करके या यूनिट ट्रस्ट बैंक के

किया जा सकता है। इससे यदि वर्तमान में नहीं तो भविष्य में समृद्धि में उसका भाग उसके लिए सुरक्षित हो जावेगा। विकास वित्तीकरण की सारी आवश्यकतायें इस प्रकार से पूर्ण की जा सकती हैं। यह मार्ग उद्योगों के प्रजातन्त्रीकरण के लक्ष्य को प्राप्त करायेगा और विकास प्रक्रिया में सामाजिक लागतों के प्रभाव को संतुलित करेगा। विकास या सुरक्षा की आवश्यकतायें वास्तविक मजदूरी प्रदान करने में कोई अवरोध नहीं उत्पन्न करती हैं।

भारतीय परिस्थिति की सच्चाई यह है कि वर्तमान मुद्रा स्फीति प्रायः सरकार द्वारा उत्पन्न की गई परिस्थिति है। राजनैतिक परिस्थितियों के दबावों के समक्ष नत होकर सरकार ने बढ़ी मात्रा में हीन अर्थ प्रबन्ध की नीति को अपनाया। इस प्रकार से उत्पन्न की गई मुद्रा का बहाव या तो सरकारी ठेकेदारों की जेबों की ओर हुआ जिन्होंने विभिन्न छल साधनों से अनुज्ञा पत्रों पर अधिकार करके सरल मुद्रा कमाई अथवा ग्राम्य और सहकारिता के माध्यम से बड़े भूमिपतियों या बड़े किसानों की ओर गया जो कि राजनीतिज्ञों के प्रमुख समर्थक हैं। ग्रामीण वित्तीकरण में हानिकारक ऋणों का दबाव, ऋणों का गलत प्रयोग अथवा क्षेत्रीय स्तर पर या मन्त्रियों के स्तर पर मुद्रा का दुरुपयोग नौकरशाही क्षेत्रों में भ्रष्टाचार को प्रोत्साहित करने के कारण बने और इन्होंने काले बाजार के व्यापारियों और सटोरियों को दृढ़ बनाया जिससे वे बहती हुई मुद्रा को बुद्धिमत्ता पूर्वक अपने जाल में रोक सकें यही कारण है कि हम भारतीय बाजार की परिस्थितियों में अत्यन्त अनोखा व्यवहार देखते हैं। यद्यपि मूल्यों में बड़ी तेजी दिखाई पड़ती है। उपभोक्ताओं द्वारा गम्भीर प्रक्रिया का नितान्त अभाव है। जो थोड़ा सा भी संगठन हो सका है वह केवल ट्रेड यूनियनों के समर्थन का परिणाम है कभी-कभी जनता के कुछ वर्गों और विशेष रूप से गैरश्रमिकों को ऐसा अनुभव होता कि किसी भी वस्तु का मूल्य अधिक महत्व का नहीं है। ये उपभोक्ता उसे किसी भी मूल्य पर खरीदने को तैयार हैं यदि वह बाजार में प्राप्त हो। वास्तव में हम यह नहीं सकते कि भारत में संगठित श्रमिकों की कुल शक्ति जनसंख्या के अनुपात में महत्वहीन है और जब हम देखते हैं कि उनकी वास्तविक मजदूरियां गिर रही हैं श्रम उत्पादकता में वृद्धि हो रही है तो कोई भी व्यक्ति यह सुझाव कैसे दे सकता भारतीय अर्थव्यवस्था में मूल्य-मजदूरी-मूल्य का चक्र कार्य कर रहा है? भारत में रियों का व्यवहार विश्चय ही भारतीय अर्थव्यवस्था के वर्तमान बीमारियों नहीं है। इसके प्रतिकूल यह व्यवहार आर्थिक बीमारियों का एक निर्देशक अंश तक धनवान धनी और गरीब निर्धन होता चला जा रहा है यह परिस्थिति के हितों की सुरक्षा के लिए सक्रीयता का आह्वान करती है और ऐसा

मजदूरियों को पूर्ण सुरक्षा प्रदान करके किया जा सकता है। सरकार जो कि मूल्य का प्रमुख प्रोत्साहक है उसकी यह केन्द्रीय जिम्मेदारी होनी चाहिए। यदि एक बार यह केन्द्रीय दायित्व स्वीकार कर लिया जाय तो अन्य प्रश्न केवल प्रक्रिया सम्बन्धी पहल मात्र बन जाते हैं।

अतः वास्तविक मजदूरी को प्रत्येक परिस्थिति में सुरक्षा प्रदान करने की आवश्यकता स्वीकार करने के पश्चात ऐसा करने का स्वरूप अधिक लचीले आधार पर जांचा जा सकता है। जैसा कि हम पहिले कह चुके हैं कि भारत में मँहगाई भत्ते की व्यवस्था इस देश की विशेषता है और विदेशी शासन की विरासत है। यह एक प्रकार से सेवानियोजकों को सुरक्षा प्रदान कर रही है जो सेवा निवृत्ति लाभों अथवा वेतन से सम्बन्धित भत्तों की गणना में मँहगाई भत्ते की उपेक्षा कर सकते हैं। हमारे विचार से सामान्य भुगतान की उस व्यवस्था की ओर हमें चलना चाहिये जिसमें मँहगाई भत्ता वेतन में सम्मिलित कर दिया जाय और सम्पूर्ण वेतन को प्रत्येक स्तर पर एक निर्देशांक से सम्बन्धित कर दिया जाय। ऐसा वर्तमान व्यवस्था में क्रान्तिकारी परिवर्तन करके किया जा सकता है अथवा ऐसी व्यवस्था के द्वारा किया जा सकता है जिसमें प्रत्येक इकाई के अनुसार वेतन के पुनर्आकलन का अवसर दिया जाय जिसमें मँहगाई भत्ता और वेतन को मिला दिया जाय और निर्देशांक के परिवर्तन के अनुसार उसमें वृद्धि की योजना रखी जाय।

सारे देश में मूल्य वृद्धि के प्रभाव निरशन के स्वरूप का मुख्य आकार एक होना चाहिए। यह व्यवस्था ऐसी होनी चाहिये कि जहां तक सम्भव हो विन्दु से विन्दु और महीने से महीने के अनुसार सम्बन्धित जीवन निर्वाह निर्देशांक के वृद्धिमूलक तत्व की गणना की जानी चाहिए। इस प्रकार दिया जाने वाला प्रभाव निरशन वास्तविक वेतन के आधार पर होना चाहिए न कि विभिन्न स्तरों के आधार पर जैसा कि केन्द्रीय सरकार की सेवाओं में किया जाता है अथवा न्यूनतम वेतन के आधार पर जैसा कि टेक्सटाइल उद्योग में किया जाता है। इन दोनों ही उदाहरणों में श्रमिकों की एक बड़ी संख्या को घोषित प्रभाव निरशन से कम दिया जाता है और न्यूनतम आधार पर दिया जाने वाला प्रभाव निरशन श्रमिकों के विरुद्ध एक प्रचार अस्त्र के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। यह एक अन्य उदाहरण है कि किस प्रकार से सरकार और सेवानियोजक द्वारा एक प्रतिक्रिया कारक प्रचार श्रमिकों के विरुद्ध किया जाता है और वास्तविकता के स्थान पर आंकड़ों का जाल बुना जाता है। सभी स्तरों पर श्रमिकों को कम से कम वर्तमान आधार पर साढ़े ७०० रुपया मासिक तक अपने मूल वेतन की प्रत्येक पाई के लिये जीवन निर्वाह लागत में प्रत्येक बिन्दु की वृद्धि के लिए शत-प्रतिशत प्रभाव निरशन

दिया जाना चाहिए। इस गणना के लिए आधार वर्ष वही होना चाहिए जो कि तत्सम्बन्धी निर्देशांक के लिए हो। इस निर्देशांक को भी प्रत्येक दस वर्ष के बाद एक नई दस वर्षीय परिवार आय–व्ययक खोज के आधार पर बदल देना चाहिए। यह अनुसन्धान स्थायी त्रिदलीय मशीनरी के सिद्धान्त निरीक्षण में नियुक्त एक स्वतन्त्र विशेषज्ञ समिति के द्वारा किया जाना चाहिये। यह अनुसंधान समाज के तीन विभिन्न स्तरों को सम्बोधित किया जाना चाहिए। (अ) कृषि या ग्रामीण श्रमिक (ब) फैक्ट्री श्रमिक और (स) मध्यम वर्गीय कर्मचारी। प्रत्येक स्तर के लिए उपभोक्ता मूल्य निर्देशांकों की समुचित समंक मालायें बनायी जानी चाहिए और उनको तत्सम्बन्धी वर्ग के आय–व्ययक खोज पर आधारित किया जाना चाहिए। अतः कृषि सम्बन्धी जीवन निर्वाह निर्देशांक को चाहिए कि कृषि श्रमिक के लिए एक निश्चित यथार्थ मजदूरी के मौद्रिक मूल्य को ज्ञात करें और इसी प्रकार श्रमिकों और मध्यमवर्गीय कर्मचारियों से सम्बन्धित निर्देशांकों का कार्य होना चाहिए। द्वितीयतः यह निर्देशांक विशिष्ट स्थानों, नगरों, क्षेत्रों, राज्यों और सम्पूर्ण देश के लिये अलग-अलग होने चाहिए। प्रत्येक मामले में समुचित निर्देशांक का चुनाव, सौदा करने वाली इकाई और उसकी आवश्यकताओं के अनुसार किया जाना चाहिये। अतः किसी अखिल भारतीय सेवा के लिए अखिल भारतीय उपभोक्ता मूल्य निर्देशांक अपनाया जाना चाहिए, जबकि एक छोटी स्थानीय फैक्ट्री के लिये स्थानीय निर्देशांक का प्रयोग किया जाना चाहिए। जहां कहीं भी स्थानीय निर्देशांक प्राप्त न हो राज्य अथवा क्षेत्रीय निर्देशांक का प्रयोग परिस्थितियों के अनुसार किया जाना चाहिये। उदाहरणार्थ पूना या बरेली का निर्देशांक उन नगरों के चारों ओर औद्योगिक क्षेत्र में प्रयुक्त होना चाहिये जबकि राज्य परिवहन या विद्युत बोर्ड के संस्थान के लिये जोकि सम्पूर्ण राज्य पर फैला हुआ है राज्य निर्देशांक का प्रयोग किया जाना चाहिये। जहां तक सम्भव हो समंक माला का क्षेत्र उस क्षेत्र के अनुकूल होना चाहिये जिसके श्रमिकों ने एक यूनियन बनाई है और जो अपनी मांग किसी उद्योग के विशिष्ट संस्थान के अनुसार कर रहे हैं। अतः एक फैक्ट्री जिसकी एक शाखा कलकत्ता में हो और दूसरी बम्बई में। इसी कारण से उसे एक अखिल भारतीय निर्देशांक का प्रयोग नहीं करना चाहिये, वरन् विभिन्न श्रमिकों के लिए वे विभिन्न निर्देशांक अपना सकते हैं। इस सम्बन्ध में यह स्मरण करना आवश्यक होगा कि निर्देशांकों का औसत चाहे क्षेत्रीय हो, राज्यीय हो या अखिल भारतीय हो वह प्रावधिक रूप से भ्रममूलक होगा, क्योंकि वह किसी वास्तविकता का प्रतिनिधित्व नहीं करता है। इस प्रकार का औसत वास्तविकता के आधार प्रायोगिक हो सकता है और इसका प्रयोग केवल उसी समय करना चाहिये जबकि कोई और रास्ता न हो। इसके साथ ही आकलन करने वाली सत्ता नजदीक होनी चाहिए क्योंकि सत्ता के दूर होने पर निर्देशांक की

उपयुक्तता संदेह उत्पन्न होने पर जांची नहीं जा सकती है। निर्देशांकों की भ्रममूलक गणनाओं के सम्बन्ध में अद्यतन ज्ञान के कारण यह विषय अधिक भावनाशील हो गया है और यह आवश्यक है कि निर्देशांक के सम्बन्ध में विश्वास पुनर्जाग्रत किया जाय, परन्तु इसके लिए कठिन निरीक्षण करना होगा। जब अखिल भारतीय निर्देशांक का प्रयोग किया जाता है और स्थानीय भत्तों की मांग की जाती है तब इन मांगों के प्रति उस समय तक न्याय करना असम्भव हो जाता है जब तक विभिन्न नगरों और क्षेत्रों के सम्बन्ध में सापेक्षिक मँहगाई के निर्देशांक उपलब्ध नहीं होते। कुछ प्रकाशनों से यह स्पष्ट होता है कि केन्द्रीय सांख्यिकी संस्था ने इस मामले का रहस्य समझ लिया है और उसे इस बात के लिये प्रेरणा देनी चाहिए कि वह शीघ्र ही सुधारात्मक या सन्तुलनकारी पूरक निर्देशांक बनावे जिनके आधार पर मजदूरी गणना के लिये अखिल भारतीय निर्देशांकों की माला प्रावधिक रूप से स्वीकार हो जावे।

एक बार जब निर्देशांक माला इस प्रकार स्थिर कर दी जाय तो उसे प्रत्येक माह के लिये चालू आधार माना जाय। हमारे समंकों की स्थिति यह है कि मासिक निर्देशांकों के प्रकाशन में एक लम्बी देरी हो जाती है। मूल्यों की सतत वृद्धि के सम्बन्ध में यह विलम्बना श्रमिकों को बहुत हानि पहुंचा रही है। तिमाही, छमाही या वार्षिक औसतों के सम्बन्ध में कोई प्रयत्न और वह भी ५ या १० बिन्दुओं के स्लैब के द्वारा श्रमिकों के विरुद्ध एक षड़यन्त्र मालूम होता है। निर्देशांकों की मासिक आंकड़े एक अच्छे उद्देश्य की पूर्ति कर रहे हैं और प्रशासकीय क्षेत्रों में आवधिक औसतों के सम्बन्ध की नई प्रवृत्ति को महत्व नहीं दिया जाना चाहिये। किसी अपवाद जनिक मामले में जहां मासिक निर्देशांक की गणना सम्भव न हो विकल्प के रूप में मौसमी चार महीने के औसत का प्रयोग किया जा सकता है। क्योंकि जलवायु सम्बन्धी तीन ऋतुयें जाड़ा, गर्मी और बरसात में से प्रत्येक का मूल्य प्रचलन पर प्रभाव होता है और मौसमी औसत मूल्य विचलनों को स्थिर आधार दे सकता है। विशेष रूप से यदि निर्देशांक प्रतिबद्ध बेतन का हमारा सुझाव मान लिया जाय तो निर्देशांकों के मौसमी औसत का कुछ महत्व हो जाता है। परन्तु यह एक सीमा है जिसके आगे किसी भी प्रकार के आवधिक, औसत, चाहे वह चल हों या अचल, को प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। वस्तुओं के रूप में पूर्ण भुगतान या आंशिक भुगतान की व्यवस्था वास्तविक मजदूरी की व्यवस्था में कोई अवरोध नहीं उत्पन्न करती क्योंकि मूल्यों का ध्यान रखते हुए जिन पर निर्देशांक आधारित हों मौद्रिक समान मूल्य ज्ञात किया जा सकता है। इस प्रकार से की गई जांच मौद्रिक गणना को अन्य नगद भुगतानों के समान सम्बन्धित

मौद्रिक मजदूरी माना जा सकता है। हम यह कह चुके हैं कि प्रभाव निरशन की दर मूल वेतन के प्रत्येक रुपये के लिये शत प्रतिशत होनी चाहिए और निर्देशांक के प्रत्येक बिन्दु वृद्धि के लिए अर्थात् एक दोहरी प्रतिबद्धता होनी चाहिए जैसा कि बैंकिंग उद्योग में है। अर्थात् एक वेतन के लिए और दूसरे निर्देशांक बिन्दु के लिये। केवल यही वास्तविक मजदूरी की सुरक्षा निश्चित कर सकता है। इस प्रकार की सुरक्षा के लिये उद्योग की देय क्षमता एक सम्बन्धित सम्बोध उस समय नहीं बन सकता है जबकि सिद्धान्त को सम्पूर्ण राष्ट्र पर लागू किया जाय। वर्तमान समय में कुछ फर्मों या संस्थानों के द्वारा क्षमता के इस तत्व को ढाल बनाया जा रहा है क्योंकि महंगाई भत्ते का सिद्धान्त इकाई के अनुसार सौदेबाजी पर आधारित होना संकल्पित है। एक बार यदि इसे राष्ट्रीय सिद्धान्त बना लिया जाय तो सभी तत्व अपने सही स्थान पर बैठ जायेंगे। वास्तव में मूल्य यंत्र पूर्ण रूप से धनी वर्गों के लाभ के लिए कार्य करता है जोकि अर्थ व्यवस्था और उसके बाजारों पर नियंत्रण कर रहे हैं। सपूर्ण अर्थव्यवस्था में वास्तविक मजदूरी की सुरक्षा एक सन्तुलनकारी तत्व बन जायेगा जो श्रम विरोधी परिस्थिति को दूर करेगा और मूल्य स्तर के स्थिरीकरण को प्रोत्साहित करेगा क्योंकि तब यह अर्थ-व्यवस्था के अप्रभावी वर्गों के लिए मूल्य की वृद्धि लाभदायक नहीं होने देगा जो कि सुविचारित ढंग से मूल्य वृद्धि उत्पन्न कर रहे हैं। मूल्य का स्थिरीकरण उनके लिये अधिक कठिन कार्य नहीं है जो आर्थिक यन्त्र पर नियन्त्रण करते हैं। वर्तमान वितरण या तो उद्देश्य प्रेरित है अथवा राजनैतिक विचलन का प्रतिफल है। किसी भी प्रकार से इस परिस्थिति का इलाज होना चाहिए और इसके लिए प्रेरक संघर्ष किया जाना चाहिये और लक्ष्य की प्राप्ति के लिये वास्तविक मजदूरी का कानून बनाया जाना चाहिये। कुछ लोगों को ऐसा लगेगा कि यह विचार जीवन निर्वाह निर्देशांक को अत्यधिक अधिक महत्व दे रहे हैं। हम में से सभी को मालूम है कि वे तर्क कौन से थे जिनके कारण प्रावधिक क्षेत्रों ने जीवन निर्वाह निर्देशांक शब्द समूह को उपभोक्ता मूल्य निर्देशांक शब्द समूह द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया है, क्योंकि वास्तविक जीवन निर्वाह निर्देशांक का बनाना प्रावधिक रूप से सम्भाव्य नहीं है। हमें युद्ध, अकाल या मूल्य वृद्धि की असमान्य परिस्थिति द्वारा उत्पन्न तर्क ज्ञात हैं परन्तु इन विचारों को कुछ समय तक प्रतीक्षा करने देना चाहिये जब तक कि श्रमिकों पर किया जाने वाला संचयी आक्रमण वास्तविक मजदूरी की सुरक्षा के पगों द्वारा निरस्त्र नहीं कर दिया जाता। अर्थ व्यवस्था के घटना मूलक परिवर्तनों को जो कि मासिक निर्देशांक बतलाते हैं अधिक योग्य व्यवहार द्वारा जिसमें कारणों के द्वारा निर्देशांकों के उच्चावचनों में परिवर्तन लाया जा सके, प्रतिनिधिक बनाया जा सकता है यदि बीच में युद्ध के समान कोई राष्ट्रीय संकट उपस्थित हो जाय तो समस्त जनता पर युद्ध कर लगाया

जा सकता है। परन्तु फिर भी पहिले श्रमिकों को उनके खातों में वास्तविक मजदूरी के बराबर बृद्धि दी जानी चाहिये और उसके पश्चात युद्ध कर की कटौती की जानी चाहिये। वास्तविक मजदूरी की निरपेक्ष सुरक्षा एक न्यूनतम पूर्व आवश्यकता है जिसके सम्बन्ध में समझौता नहीं किया जा सकता है। इसी अवश्यम्भावी आधार पर प्रकाशयुक्त मजदूरी नीति की सम्पूर्ण प्रवैगिकी पैगें ले सकती है।

झालरी (Fringe) भत्ता या अन्य भत्ते

मजदूरी के सिद्धान्तों पर विभिन्न परिचर्चाओं में अथवा श्रम शास्त्रियों के क्षेत्रों में झालरी भत्ते के प्रश्न ने बहुत कम महत्व प्राप्त किया है। इस विषय को दृढ़ सम्बोधात्मक आधार नहीं दिया गया है और परिभाषाओं की भिन्नतायें और क्षेत्रों के विभेद इतने अधिक हैं कि हमारे लिये स्पष्ट बात करने में कठिनाई उत्पन्न करते हैं। राष्ट्रीय श्रम आयोग की विशद प्रश्नावली में भी विषय को केवल आकस्मिक रूप से छुआ गया है और परिभाषा की प्रार्थना की गई है। इस विषय को परिभाषित करने के सम्बन्ध में केवल एक उदाहरण द्वारा विचलनों के अंश को आसानी से समझा जा सकता है। राष्ट्रीय श्रम आयोग की प्रश्नावली की प्रश्न संख्या १७९ चिकित्सा सेवा, बीमारी सुविधा, मातृका सुविधा आदि को समाज सुरक्षा मानता है वहीं मँहगाई भत्ते से सम्बन्धित गजेन्द्र गडकर आयोग की रिपोर्ट चिकित्सा सेवा को झालरी भत्ता मानती है। यह बाद की रिपोर्ट एक पग और आगे बढ़ कर कौटुम्बिक पेन्सन योजना को भी झालरी भत्ते में जोड़ देती है।

हमारे विचार से हमारे देश में इस विषय को गम्भीर एवं तात्कालिक महत्व मिलना चाहिये। श्रमिकों में विभाजित करने के लिये हमारे पास कुल कोष बहुत ही सीमित है। उनका अधिकतम उपयोग किया जाना चाहिये। झालरी भत्तों के सम्बन्ध में अन्तर राष्ट्रीय श्रम संगठन जिनेवा की "कुछ देशों में श्रम के गुण और आर्थिक विकास" नामक पुस्तिका का लघु रूप बनाया जाना चाहिये। इस पुस्तिका के लेखकों ने सामाजिक तत्वों के चार प्रमुख वर्गों से सम्बन्धित सांख्यिकी वस्तु की परीक्षा की है। जिनका सम्भवतया श्रम के गुणों पर प्रभाव पड़ता है। यह हैं :— (१) शिक्षा (२) स्वास्थ्य (३) आवास (४) सुरक्षा। लेखकों ने विभिन्न श्रम गुण निर्देशांकों की परीक्षा के आधार पर यह ज्ञात किया है कि खाद्य का स्तर आर्थिक विकास से अत्यन्त निकट का सम्बन्ध रखता है। उच्च शिक्षित वर्गों में इस स्तर की बृद्धि एक चल प्रमाण के रूप में आशा बँधाती है। भारतीय मजदूर संघ की यूनियनों का यह

अनुभव रहा है कि अति सुन्दर कैन्टीन व्यवस्थायें या आवास की निकटता का नागरी क्षेत्रों में अनुपस्थिति को कम करने में बहुत अच्छा प्रभाव रहा है। हमारे देश में अभी तक सामाजिक सुविधाओं पर किये गये व्ययों का श्रम शक्ति के गुण पर पड़ने वाले प्रभाव को स्पष्ट आंकिक आधार पर नापने की विधि का विकास नहीं हो सका है। उपरोक्त पुस्तिका में यह दिखाया गया है कि किस प्रकार से सांख्यिकी रीतियों को विभिन्न प्रकार के झालरी भत्तों और आर्थिक विकास पर उनके प्रभाव के आंकिक स्वरूप को जानने के लिये प्रयुक्त किया जा सकता है जिससे यह ज्ञात हो सके कि झालरी भत्तों से श्रम के गुणों की कहाँ तक बृद्धि हुई है। जब तक सुयोग्य प्रकार से इस प्रकार का व्यायाम नहीं किया जाता उत्पादन लागतों पर झालरी भत्तो के प्रभाव को जाँचा नहीं जा सकता है। अधिक मौद्रिक आयों के विकल्प के रूप में उनका मूल्यांकन नहीं किया जा सकता है जिससे उद्योग की लागत या श्रमिकों को लाभ का पता चल सके।

झालरी भत्तों पर एक अन्य विचार है जिसका हम भारतीय परिस्थितियों में माडल के रूप में प्रतिपादन करना चाहते हैं। परन्तु इस विषय पर हम विस्तार से विचार करने के पूर्व एक नवीन विचार रखना उपयुक्त समझते हैं जिसके अनुसार झालरी भत्तों को सुनहरी जजीरें माना गया है। इस विचार के अनुसार सेवा नियोजकों द्वारा झालरी भत्ते देकर कर्मचारियों को अपनी इच्छाओं और योजनाओं के अनुसार सुनहरी जंजीरों में बाँध दिया जाता है। अतः एक मकान जो कि किसी कर्मचारी को एलाट कर दिया जाय जिसका वह अपने सम्पूर्ण कार्यकाल में भी स्वामी नहीं बन सकता है और जिसका उपयोग सेवायोजकों द्वारा निर्धारित नियमों के अनुसार ही कर सकता है। एक ऐसा अहसान है जो कि श्रमिक को स्वतन्त्र प्रकार से व्यवहार करने से रोकता है। इसके कारण वह सेवा नियोजक के विरुद्ध हड़ताल या प्रदर्शन में भाग लेने से पहिले दो बार बिचार करता है या इसी के कारण वह रात्रि में या कठिन घण्टों में ड्यूटी देता है। इस प्रकार की आवासिक सुविधा व्यवस्थापक को एक अवसर प्रदान करती है कि वह श्रमिक की व्यक्तिगत या पारिवारिक कमजोरियों को जान सके और जब भी व्यवस्थापकों का मन चाहे वे उनका उपयोग कर लें। इस विचार समुदाय का दृष्टकोण है कि हम श्रमिक न चाहते हैं और न झालरी भत्ते माँगते हैं। हमें जो कुछ भी दे सकते हो मजदूरी के रूप में वह दे दो और हम जैसे भी चाहेंगे उसे व्यय करेंगे। तुम्हें हमारे व्यय के ढाँचे की प्राथमिकताओं से कोई सरोकार नहीं है। यह विचार प्रणाली एक महत्वपूर्ण गुण रखती है और सेवा नियोजकों के विरुद्ध एक आघात है जो इस मामले का तमाशा बनाना चाहते हैं।

झालरी भत्ता शब्द का यह अर्थ निकलता है कि एक पितृ भावना से प्रेरित व्यवस्था दया या कृपा करके कुछ दे रही है। परन्तु यह अर्थ अब इससे अधिक कुछ नहीं बतलाता कि इस नाम के अन्तर्गत वास्तव में श्रमिक को क्या मिल रहा है। तथाकथित झालरी भत्ते आज माँग पत्रों के अंग बन गये हैं। और विभिन्न ट्रिब्यूनल उनके सम्बन्ध में अपने निर्णय दे रहे हैं। अनेक मामलों में वे अधिकार की वस्तु बन गये हैं। न केवल एक रूढ़िगत व्यवहार के द्वारा वरन् कानूनी तौर पर न्याय्य समझौतों और निर्णयों के द्वारा व्यवस्थापिकों ने भी मँहगाई भत्ते या भत्तों की मात्रा निर्धारित करने में छूट प्राप्त करने के लिये इन भत्तों की गणना करना प्रारम्भ कर दिया है। इन प्रवृत्तियों को प्रत्यावर्तित न तो किया जा सकता है और न करने की आवश्यकता है। सही दृष्टिकोण यह होगा कि इन झालरी भत्तों को सामुदायिक सेवायें माना जाय और उन्हें एक राष्ट्रीय, सामाजिक, आर्थिक लक्ष्य की प्राप्ति में औद्योगिक समुदायों की स्थापना की योजना का अंग बना दिया जाय। इस सन्दर्भ में उन्हें मजदूरी के निर्धारण के उन बन्धनों से मुक्त कर दिया जाना चाहिये जिनसे वे बंधे हुये हैं। मजदूरी के सम्बन्ध में चर्चा के बीच किसी भी समय झालरी भत्तों की मौद्रिक गणनाओं को वेतन के परिमाण को प्रभावित करने के लिये नहीं करना चाहिए। अनेक प्रकार की सुविधाओं के लिये जैसे निःशुल्क, आवास, कैन्टीन इत्यादि यह वास्तव में कठिन है कि उनकी उस प्रकार से गणना की जा सके कि झगड़े से सम्बन्धित सभी पक्ष संतुष्ट हो सकें। साथ ही इस प्रकार का शुद्ध आर्थिक विचार सामाजिक सुविधाओं के रूप में उनका आकर्षण नष्ट कर देता है। उन्हें मजदूरी के झगड़ों के सम्बन्ध में जीवन निर्वाह के लिए अधिक से अधिक एक तत्व माना जा सकता है। परन्तु यदि ऐसा न हो तो एक आनवार्य और निर्णयमूलक उद्योग का श्रमिक के प्रति कर्तव्य मानकर गम्भीर महत्व दिया जाना चाहिये। उन्हें सामाजिक सुरक्षा के सम्बोध से स्पष्ट रूप से अलग कर देना चाहिए जिनकी व्यवस्था समाज उद्योग के सहयोग से करता है। समाज सुरक्षा और सामुदायिक सेवाओं का विभाजन विषय के दृष्टिकोण से नहीं वरन् प्रशासनिक दृष्टिकोण से किया जाना चाहिए। निश्चय ही प्राविडेन्ट फन्ड, बेरोजगारी बीमा इत्यादि ऐसे विषय हैं जिनकी व्यवस्था एक सामाजिक प्रत्यंग के द्वारा अधिक उत्तम रीति से की जा सकती है न कि औद्योगिक व्यवस्था के द्वारा। इसके प्रतिकूल कैन्टीन यात्रा सुविधा इत्यादि के प्रश्न उद्योगों द्वारा अधिक उत्तमता से हल किये जा सकते हैं। आवासीय या चिकित्सा सुविधा जैसे कुछ विषय अवश्य होंगे जिनका प्रबन्ध दोनों के द्वारा किया जाना सम्भाव्य होगा। यहां समाज सेवाओं का एक अन्य अन्तर स्पष्ट करना उचित होगा जैसे नि.शुल्क प्राइमरी या सेकेन्ड्री शिक्षा म्यूनिसपल अस्पताल इत्यादि। यह सभी नागरिकों के लिये बनाये जाते हैं और यह एक अलग विषय है।

सामाजिक सुरक्षा का अर्थ वे व्यवस्थायें हैं जिन्हें औद्योगिक और सरकारी कोष से श्रमिकों और उनके परिवारों की सामान्य जनसेवाओं के अतिरिक्त सहायता की जाती है। जैसे ही कोई व्यक्ति एक श्रमिक का जीवन अपना लेता है वह इन सुविधाओं का अधिकारी हो जाना चाहिये। इन भत्तों की व्यवस्था स्थायी त्रिदलीय समिति द्वारा की जानी चाहिये जिसका सुझाव इस पुस्तक के अन्य भागों में हमने दिया है। इस बात का कारण यह है कि इन सेवाओं को उद्योग को नहीं सौंपना चाहिए क्योंकि वे एक राष्ट्रीय व्यवस्था द्वारा अधिक सुरक्षापूर्वक वितरित की जा सकती है। एक टेक्सटाइल मिल में एक श्रमिक अपने मिल से वृद्धावस्था पेंसन प्राप्त करने के लिये पूर्ण रूप से आश्वस्त नहीं हो सकता है क्योंकि समय आने तक हो सकता है कि मिल पर कर्जे हो जांवें या उसका विसर्जन हो जाय। किन्तु ऐसा एक राष्ट्रीय प्रत्यंग के सम्बन्ध में नहीं कहा जा सकता है जिसका निर्माण ही विशेष रूप से इसी उद्देश्य से किया जाय। परन्तु इसके संबंध में हम और अधिक विचार करेंगे, जब सामाजिक सुरक्षा के पहलू पर कहेंगे। तब तक के लिये यह कहना पर्याप्त होगा कि सामुदायिक सेवाओं में वे सब सेवायें सम्मिलित होनी चाहिये जोकि औद्योगिक समुदाय के द्वारा प्रदान की जाती हैं, चाहे उनका प्रारम्भ सेवा नियोजक के द्वारा किया गया हो या उनकी उत्पत्ति कर्मचारियों की मांगों से हुयी हो अथवा वे कानूनी संविदात्मक दवाओं से प्रकट हुयी हों उनमें वे सारी सुविधायें सम्मिलित होनी चाहिये जिनको कि आज झालरी भत्ते का नाम दिया जाता है।

एक उद्योग में कार्य करने वाले सभी व्यक्तियों को एक औद्योगिक परिवार मानना चाहिये। सामान्य सेवाओं और सुविधाओं की वस्तु और क्षेत्र क्या होनी चाहिये जो कि यह औद्योगिक परिवार अपने लिये प्राप्य बनावे इसे उसके अपने निर्णय पर छोड़ देना चाहिये, परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि इस सम्बन्ध में कानून की कोई प्रतिबाध्यता न हो सके। उदाहरणार्थ यह हमारा मत है कि वर्तमान स्थिति में कुछ कानूनी प्रतिबाध्यतायें अतिशय आवश्यक हैं, जो कि एक श्रमिक को अधिकार के रूप में प्राप्य होना चाहिये। जिस समय से भी उसका प्रवेश एक श्रमिक के रूप में हो। प्रथमतः विशेष रूप से बड़े नगरों के क्षेत्रों, नई बनी हुई नगरियों और औद्योगिक कालोनियों में उन्हें आवासीय सुविधा मिलनी चाहिये। द्वितीयतः इन सुविधाओं में कार्य स्थान की सुविधायें, जैसे जलपानग्रह, शौचादि की सुविधा, स्नानागार, प्राथमिक चिकित्सा इत्यादि। बालकों के देख-भाल की व्यवस्था जहां स्त्रियां कार्य करती हों अथवा सभ्य जीवन की अन्य मूलभूत आवश्यकतायें सम्मिलित की जानी चाहिये। परन्तु उन्हें आवश्यक रूप से कानूनी न्यूनतम तक अवरोधित नहीं रखना चाहिये। उनका क्षेत्र इतना अधिक विस्तुत होना चाहिये जितना कि विशिष्ट उद्योग, फर्म या

संस्थान कर सके। और यह औद्योगिक समुदाय के लिये गर्व का कारण होना चाहिये कि वह अपने कर्मचारियों को आदर्श सामुदायिक सेवा प्रदान कर सके। सरकार भी यह अच्छा कार्य करेगी यदि वह विभिन्न क्षेत्रों या विभिन्न दृष्टिकोणों से इस सम्बन्ध में उत्तम कार्य के लिये पुरस्कार रख कर प्रोत्साहन दे और इन पुरस्कारों का विस्तृत विज्ञापन करे, जिससे वे व्यवसायिक सम्मान का उद्गम और अच्छे से विनियोजक व्यवहार का मापदण्ड बन सकें। इन सेवाओं को मानवीय दृष्टिकोण से देखना चाहिये जिसके लिये समाज या उद्योग वस्तुतः जीवित है। वे स्वयं में ही एक लक्ष्य हैं। दूसरे इस सम्बन्ध में यह उल्लेख किया जाना चाहिये कि जहाँ मजदूरी, उत्पादन, बोनस इत्यादि को निश्चित परिस्थितियों में उत्पादन और कार्य के गुण से सम्बन्धित किया जाना चाहिये वहीं सामुदायिक सेवाओं के सम्बोध को एक विस्तृत आधार पर प्रतिष्ठित करना चाहिये। जहाँ अर्थ व्यवस्था की उत्पादन प्रक्रिया में व्यक्ति कार्य की एक इकाई है, वहीं सामाजिक ढाँचे में परिवार उपभोग की एक इकाई है। परिवार का यह सम्बोध केवल श्रमिक उसकी पत्नी और उसके बच्चों तक ही प्रतिबन्धित नहीं किया जाना चाहिये। जैसा कि कुछ सेवानियोजकों ने क्रूरतापूर्वक श्रमिकों के माता-पिताओं को उनके एलाट किये गये कमरों से निकाल कर प्रदर्शित किया है। सामुदायिक सेवाओं की दृष्टि से परिवार की परिभाषा में वे सभी व्यक्ति आते हैं, जिन्हें श्रमिक अपने परिवार के चौके का अंग मानता है। अतः वे अतिथि भी जो अल्प काल के लिये आते हैं, उन्हें चिकित्सा सम्बधी अथवा खेल-कूद की सुविधायें औद्योगिक समुदाय द्वारा प्रदान की जानी चाहिये। यह अधिक उत्तम होगा यदि इन सामुदायिक सेवाओं के बजट एवं व्यवस्था श्रमिकों के द्वारा बनाई जाय तो इससे आवश्यक लोच और विचारों का सन्तुलन प्राप्त किया जा सकता है। इसके द्वारा उद्योग के श्रमिकीकरण और कार्यशील समुदायों के स्वायत्त निर्माण का मार्ग प्रशस्त होगा जो कि एक आदर्श सामाजिक व्यवस्था का अग है। इन सामुदायिक सेवाओं के लिये कोष सेवानियोजकों और श्रमिकों से समय-समय पर निश्चित की गई पद्धति से प्राप्त किया जा सकता है जिसमें सरकार द्वारा आवास या बाल व्यवस्था या सामुदायिक विकास जैसे विशिष्ट कार्यों के लिये सामान्य विकास योजनाओं के द्वारा पूरक व्यवस्था भी की जा सकती है। ऐसी स्थिति में स्पष्टतः इन सेवाओं का उत्पादन लागतों और मजदूरी के अन्तरों से सम्बन्ध नहीं रह जायगा। यह व्यवस्थायें केवल उपभोग विषयक व्यवस्थायें हैं, जिन्हें सर्व-साधारण रीति से बनाया गया है क्योंकि इसी प्रकार से वे अधिक आर्थिक और सुविधाजनक हो सकती है और अधिक बन्धु भाव को तथा उद्योग और कार्य स्थान के लिये निष्ठा को प्रोत्साहित कर सकती हैं।

मजदूरी के अन्तर

यथा यथा तु गुणवान् भृतक तद् भृतिस्तथा ।
संयोज्या तु प्रयत्नेन नृपेणात्महिताय वै ॥
(शुक्रनीति, अध्याय २)

मजदूरी के अन्तरों का क्षेत्र आर्थिक सक्रियता का एक ऐसा क्षेत्र है जो कि राष्ट्र निर्माण की योजना के अंग के रूप में राष्ट्रीय गुणों के सम्बर्धन से निकट सम्बन्ध रखता है। एक शुद्ध आर्थिक प्रस्ताव के रूप में भी इस विषय का विशेष महत्व है क्यों कि उसका सम्बन्ध मानवीय प्रयत्न को गुण और मात्रा के अनुसार इस प्रकार से पुरस्कृत करना है कि वह सर्वोच्च अंश में सृजनात्मक चेष्टा को गति प्रदान करेगा और एक दी हुई परिस्थिति में अनुकूल प्रतिफलों की प्राप्ति करेगा, वरन् भविष्य के लिए आशा और विश्वास का कीर्ति स्तम्भ होगा जैसा कि उपरोक्त शुक्रनीति के श्लोक में उत्तम प्रकार से कहा गया है कि राजा (अथवा सेवानियोजक) को चाहिये कि वह मानवीय गुणों के भेदों को ध्यान रखता हुआ पूर्ण सतर्कता से और प्रयत्न पूर्वक समुचित मजदूरियों के अंतर स्थापित करे, क्योंकि इसके द्वारा ही वह अपना (अथवा राज्य का) कल्याण कर सकता है। यह स्पष्ट है कि एक विकासमान अर्थ व्यवस्था में हमें मानवीय सम्बन्धों के इस मूल तत्व का बुद्धि पूर्वक प्रयोग करने में सतर्कता रखनी चाहिये, जिससे हम अपने मार्ग पर त्वरित गति से चल सकें।

इस दृष्टिकोण से देखने पर यह कहना पड़ेगा कि इस अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्व को भारतीय उद्योग और सेवाओं में अत्यन्त अल्प ध्यान दिया गया है। औसत श्रमिक के पास कोई ऐसी निर्देशक रेखायें नहीं हैं कि वह जान सके कि उसे कौन से मानवीय गुणों की बृद्धि करनी चाहिये जिससे वह ईमानदारी से और न्यायपूर्ण विधि से अधिक कमा सके। आज वह और उसके बालक स्कूल में और माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करते हैं इस विश्वास से कि शिक्षा नौकरियों के द्वारा पुरस्कृत की जाती है, यह प्रदर्शित करता है कि भारतीय श्रमिक समाज द्वारा स्थापित मान दण्डों के प्रति भावुक है। इसी कारण भाषा सम्बन्धी आन्दोलनों को सेवानियोजकों से प्रतिबद्ध किया गया था। परन्तु हमने क्लर्की की नौकरियों को जो मूल्य प्रदान किया था—गिर रहा है जिसके लिए आज भी स्कूल प्रशिक्षण दे रहे हैं। ऐसी शिकायतें प्रायः प्राप्त होती है कि क्लर्की सेवाओं में अत्यधिक भर्ती हो गई है और इन वर्गों पर तेजी से आघात करने के लिये स्वचालितीकरण लाया जा रहा है। ऐसा कहा जाता है कि आने वाले दिनों में रूढ़िगत कौशल से

भिन्न कौशल की आवश्यकता होगी परन्तु मजदूरी के अन्तरों के सम्बन्ध में किसी उत्तम राष्ट्रीय नीति के माध्यम से कोई निर्देशक रेखायें नहीं दी जा रही हैं, जो पुरुषों एवं महिलाओं द्वारा उपयोगी आर्थिक गुणों को प्राप्त करने के निमित्त प्रदर्शित चेष्टाओं और इच्छाओं को मार्ग दे सकें। वेतन के अन्तरों के सम्बन्ध में औचित्य के प्रचार के सिद्धान्त के प्रति राष्ट्रीय उपेक्षा एक मूलभूत कारण है जो आधुनिक युवकों के जीवन को दिशा नहीं दे पा रही है और राष्ट्र जीवन को हानि पहुंचा रही है। यह अत्यन्त आवश्यक है कि श्रम सम्बन्धी राष्ट्रीय आयोग को यह पहलू अत्यधिक महत्व का मानना चाहिये और इसे उससे अधिक स्थान देना चाहिये जैसा कि उसकी प्रश्नावली में दिया गया है।

फेयरवेज कमेटी ने वेतन अन्तरों के विषय पर विचार करते समय अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की रिपोर्ट का ठीक ही निम्नलिखित हवाला दिया है "किसी भी देश में अधिकतम आर्थिक एवं सामाजिक कल्याण की उपलब्धि के लिए यह आवश्यक है कि विभिन्न देशों और उद्योगों में आपेक्षिक मजदूरियाँ इस प्रकार से निश्चित हों कि– (अ) वह अर्थव्यवस्था के विभिन्न पेशों, उद्योगों एवं भौगोलिक क्षेत्रों पर श्रमिकों का इस प्रकार विभाजन करें कि राष्ट्रीय उत्पादन अधिकतम हो, (ब) जिससे अर्थव्यवस्था के संसाधनों का पूर्ण विनियोजन प्राप्त हो सके और (स) अत्यन्त उपयुक्त आर्थिक विकास की दर को प्राप्त किया जा सके।"

परन्तु विषय प्रवेश इतनी गम्भीरता से करने के उपरान्त मजदूरी के अन्तरों को स्थापित करने के लिये कोई भी निर्देशक रेखायें प्रस्तुत करने में रिपोर्ट बुरी तरह असफल हुई है। जिन नौ तत्वों का सुझाव कमेटी ने दिया है वे केवल एक औपचारिक व्यवहार के द्योतक हैं। उदाहरणार्थ उसमें एक तत्व "मानसिक एवं शारीरिक आवश्यकतायें" वर्णित है जोकि इतना स्पष्ट है कि उसका कोई उपयोग हो नहीं किया जा सकता है। वस्तुतः कमेटी ने विषय को वेजबोर्ड या अन्य भृत्ति निर्धारक सत्ताओं के लिए छोड़ दिया है जिनसे यह आशा की गई है कि वे अपने प्रतिमान खोजें। यह आश्चर्य की बात नहीं है कि ऐसे वेजबोर्डों ने जैसे पोर्ट तथा डाक वेजबोर्ड ने विषय का उल्लेख केवल प्रश्नावली में किया है और व्यवहारिक रूप से उसे उसी स्थान पर छोड़ ही दिया है। कुछ औद्योगिक निर्णयों में जैसे Best, बम्बई ने पद-मूल्यांकन के सम्बन्ध में कुछ व्यायाम किया है। परन्तु क्योंकि इन संस्थाओं को सापेक्षिक तत्वों के लिये भार प्रदान करने के सम्बंध में कोई निर्देशक रेखायें नहीं प्रदान की गई हैं, इन्होंने केवल विदेशी विषय सम्बन्धी पुस्तकों का ही प्रयोग किया है जोकि भारतीय

परिस्थितियों से कोई मेल नहीं रखती हैं। साथ ही वेतन-अन्तरों से सम्बन्धित किसी भी वैज्ञानिक व्यवस्था जैसे पद-मूल्यांकन, के लिये एक पूर्णकालिक सतत अध्ययन की आवश्यकता रहती है, जो समय समय पर परिवर्तित होने वाली पद-वस्तु का पूर्ण ध्यान रखे और उसके प्रतिफलों को सार्थक करने के लिये उसका समर्थन योग्यतामापन की किसी व्यवस्था से करें। परन्तु गम्भीरता पूर्वक इसके सम्बन्ध में कुछ भी किया गया ऐसा प्रतीत नहीं होता है। यह केवल इंजीनियरिंग इकाइयों में हुआ है जैसे भाण्डुप की GKW फैक्टरी, बम्बई में, कि पद-मूल्यांकन को एक तर्कसंगत स्तर पर रखा गया है। परन्तु यहां पर या अन्य समान स्थानों पर जहां विदेशी व्यवस्थापकों का औद्योगिक सम्बन्धों के बनाने में हाथ है, केवल विदेशी विचारों को भारतीय धरा पर बोया गया है।

भारतीय मनोवैज्ञानिकों के लिए मजदूरी के अन्तरों के विषय में वैज्ञानिक पद-मूल्यांकन एक कठिन व्यायाम नहीं है। इस सम्बन्ध में प्रक्रिया ठीक प्रकार सेकी जा च की है जो पद-व्याख्या से प्रारम्भ होती है और पद-समूहों से पद विशिष्टता निर्धारण करके मूल-पदों या प्रतिमान कार्यों के चुनाव करने, तत्वों के निश्चय करने और पद-मूल्यांकन करके उनको विभिन्न वेतन-भेदकों में रखकर प्रभावित करने वाले तत्वों का पूर्ण ध्यान रखते हुए मौद्रिक मूल्यांकन करता है। अनुस्थिति निर्धारण की अंकेतर रीतियाँ तथा ग्रेड व्याख्या रीति तक अत्यन्त प्राथमिक उपयोग है और उनके आधार पर ऐतिहासिक सापेक्षकों से तत्व तुलना तथा विन्दु-मूल्यांकन रीति तक पहुंचने का मार्ग प्रशस्त हो सकता है। भारतीय परिस्थितियों में शोध करने की आवश्यकता इस सम्बन्ध में है कि भृत्ति-विषमता के सम्बन्ध में विभिन्न तत्वों और सहिष्णुता–प्रतिमानों का सही भार–निरूपण किया जाए। हमारे मत से तो समस्या का उचित समाधान तभी खोजा जा सकता है जब कार्यशील जनता के प्रमुख आर्थिक वर्गों के लिये अथवा विनियोजित क्षेत्र के लिये सामान्य राष्ट्रीय निर्देशक रेखायें बना दी जायें।

विश्व के विभिन्न आर्थिक दृष्टि से विकसित देशों ने अपने देशों में वेतन-भेदकों को निर्धारित करने के लिए पद मूल्यांकन रीतियों के सम्बन्ध में अनेक प्रयोग किये हैं। आस्ट्रेलिया में इंजीनियरिंग उद्योग के सम्बन्ध में कॉमन वेल्थ कोर्ट आफ कन्शीलेशन एड आर्बीट्रेशन मैटल ट्रेड एवॉर्ड को प्रायः आधार माना जाता है–इस एवॉर्ड में पद-मूल्यांकन योजना के मुख्य तत्वों के रूप में कौशल और बिना निरीक्षण के कार्य के दायित्व को माना गया है। यह भारत की व्यवस्था के अत्यन्त प्रतिकूल है, जहां शिक्षा या स्कूल की योग्यता को प्रमुख महत्व दिया जाता है अर्थात् जहां क्लर्की की

मनोवृत्ति बहुत अधिक फैली हुयी है। बैलजीयम में सन् १९४५ ई० में श्रम और सामाजिक सुरक्षा के मन्त्रालय द्वारा जनरल टेक्नीकल कमीशन बनाया गया जिसने ३२ क्षेत्रों की एक लिस्ट बनायी जिनका पदवर्गीकरण योजना में प्रयोग किया जाना चाहिये। उन्हें पांच प्रमुख शीर्षकों में वर्गीकृत किया गया।

(१) कार्य सम्बन्धी प्रशिक्षण और ज्ञान जिसमें सैद्धान्तिक ज्ञान और व्यवहारिक प्रशिक्षण सम्मिलित हो। (२) शारीरिक गुण जिनमें स्नायु चालक और शक्ति सम्बन्धी गुण सम्मिलित हैं। (३) बौद्धिक और मानसिक गुण। (४) चरित्र और व्यवहार तथा (५) पद सम्बंधी परिस्थितियाँ। इन तत्वों को अधिकतम भार के विंदु निम्नलिखित थे।

बेलजीयम : जनरल टेक्नीकल कमीशन के द्वारा बनायी गयी योजना में पद-वर्गीकरण के लिए प्रयुक्त तत्व—

तत्व	अधिकतम विन्दु
१—कार्य सम्बन्धी प्रशिक्षण एवं ज्ञान—	
(अ) सैद्धान्तिक प्रशिक्षण एवं ज्ञान	
१—स्कूल शिक्षा	५००
२—पूरक प्रशिक्षण	५००
(ब) व्यवहारिक प्रशिक्षण	
३—व्यवहारिक एप्रैन्टिसशिप एवं अन्य प्रशिक्षण	३८८
४—अव्यवहारिक एप्रैन्टिसशिप एव अन्य प्रशिक्षण	५००
२—शारीरिक गुण :	
(अ) अनुभूति विषयक	
५—दृष्टि	१००
६—स्पर्श	१००
७—श्रवण	१००
८—घ्राण	१००
९—स्वाद	१००
(ब) चालक	
१०—प्रचलनों की गति	१५०
११—प्रचलनों की सुतथ्यता	१५०
१२—प्रचलनों का समन्वय	१५०

तत्व	अधिकतम बिन्दु
१३–प्रतिक्रिया की गति	१५०
१४–चपलता	१००
(स) मांस पेशीय :	
१५–मांस पेशीय प्रयत्न	२५०
१६–स्थिति	१००
३—बौद्धिक और मानसिक गुण :	
१७–एकाग्रता	३००
१८–निर्णय	२००
१९–स्मरण शक्ति	२००
२०–अनुसंधान वृत्ति	२००
२१–सुरुचि	२००
४—चरित्र एवं व्यवहार :	
(अ) चरित्र :	
२२–निर्देशन सत्ता	१५०
२३–नैतिक सत्ता	१५०
२४–प्रत्युत्पन्न मति	१५०
२५–अनुक्रम एवं स्वच्छता	१५०
२६–छवि	१५०
(ब) व्यवहार :	
२७–अन्यों के प्रति	४००
२८–उद्योग के प्रति	४००
२९–व्यवहार के मापन योग्य परिणाम	४००
५—पद सम्बन्धी परिस्थितियाँ :	
३०–वातावरण का प्रभाव	३००
३१–दुर्घटनाओं के जोखिम	३३०
३२–बीमारी के जोखिम	३००

फ्रान्स में पदों के लिये पद-मूल्यांकन की दो योजनाओं का प्रयोग किया गया जिनमें से क्रमशः एक प्रमुखतः शारीरिक, द्वितीय प्रमुखतः बौद्धिक थी। शारीरिक श्रमिकों के नीचे दिये हुए प्राप्तांक यह बताते हैं कि मूल्य आवश्यक रूप से अपने अंश

के रेखीय अनुपात में नहीं है (इसके विरुद्ध भारत में अप्राकृतिक प्रवृत्ति अंकगणतीय वृद्धि को स्वीकार करने की है)।

फ्रान्स—टैलेमिकैनिके इलैक्ट्रिके प्लान्ट नान्टैरे संस्थान में शारीरिक श्रमिक के लिए पदमूल्यांकन योजना के अन्तर्गत तत्व और विन्दु :

तत्व	प्रत्येक अंश के लिए प्राप्तांक						
	१	२	३	४	५	६	७
१–प्रशिक्षण	११	१४	१७	२२	२८	–	–
२–व्यावहारिक अनुभव	११	१४	१७	२२	२८	३६	४४
३–अनुकरण	१०	१२	१४	१७	२०	२३	–
४–कार्य की कठिनता	७	१२	१७	२२	२८	३४	–
५–शारीरिक प्रयत्न	७	१०	१३	१६	२०	–	–
६–मानसिक अथवा दृष्टि केन्द्रण	७	१०	१३	१६	२०	–	–
७–कल-पुर्जों और उत्पादन के लिये दायित्व	५	६	८	१०	१२	–	–
८–कच्चे माल और प्रगतिमय कार्य के लिये दायित्व	५	६	८	१०	१२	–	–
९–अन्यों की सुरक्षा के लिये दायित्व	५	६	८	१०	१२	–	–
१०–अन्यों के कार्यों के लिये दायित्व	५	७	१०	१५	२०	–	–
११–कार्य की परिस्थितियाँ	७	१०	१३	१६	२०	–	–
१२–कार्य की पूर्ति में जोखिम	५	६	८	१०	१२	–	–

प्राय: एक तत्व के विभिन्न अंशों के लिए विन्दुओं को निर्धारित करने के लिए

विस्तृत सूचनायें दी जाती हैं। निम्नलिखित सारिणी में अन्य लोगों की सुरक्षा का दायित्व, नामक तत्व के विभिन्न अंशों के लिए बिन्दु मूल्यांकन को समझाया गया है।

फ्रान्स : टैलेमिकैनिके इलैक्ट्रिके प्लान्ट नान्टैरे के समस्त कर्मचारियों के लिए पद मूल्यांकन योजना के अन्तर्गत अन्यों की सुरक्षा के लिए दायित्व के अंक—

जोखिम की प्रकृति	जोखिम की सम्भावना की अवधि	
	अवधि के ३० % से कम	अवधि के ३० % से अधिक
१	२	३
१—अकेले में अथवा बिना यंत्रों के और केवल प्रकाश के यन्त्रों के साथ असम्भाव्य कार्यों में अन्यों की दुर्घटनायें	—	५
२—कार्य जिसमें अन्यों को अल्प दुर्घटनायें सम्भव हों; इस जोखिम को दूर रखने के लिये एक तर्क संगत सतर्कता की आवश्यकता है	६	७
३—एक मशीन पर कार्य करते समय असतर्कता अथवा किसी आज्ञा के पालन करते समय असतर्कता अन्यों को गम्भीर दुर्घटनाओं में डाल सकती है : पैर या उंगली पिच जाना, नेत्रों पर आघात	७	८
४—पद सम्बन्धी कार्य को पूर्ण करते समय गम्भीर दुर्घटनाओं को रोकने के लिए स्थायी सतर्कता की आवश्यकता परन्तु चोट लगने से अन्य लोग ध्यान रख कर बच सकते हैं	९	१०
५—अन्यों की सुरक्षा अपवर्जी रूप में कार्य करते समय सावधानी पर निर्भर है और अल्प अंश में भी असतर्कता मारक प्रतिफल उत्पन्न कर सकती है	१०	१२

जर्मन प्रजातान्त्रिक रिपब्लिक में सभी उद्योगों के लिये पद मूल्यांकन की एक ही योजना लागू की गई है। इस योजना में अत्यधिक महत्व 'ज्ञान और अनुभव" को दिया गया है, परन्तु इस तत्व के लिये अन्य तत्वों के ४ या ५ अंशों की अपेक्षा १० अंश रखे गये हैं। जर्मनी के फैडरिल रिपब्लिक में फैक्टोरल डिजायन की एक व्यवस्था यूलर स्टीवैन्स रीति के अन्तर्गत प्रयुक्त होती थी, जो कि ५३ अंकों पर आधारित थी जिनमें से कार्य पद परिस्थितियों के लिये १९, दायित्व के लिये ९, कौशल और ज्ञान के लिये ११ और विभिन्न प्रकार के प्रयत्नों के लिये १४ अंक निर्धारित थे। नीदरलैण्ड नेशनल स्टैन्डर्डस् कमीशन ने निम्नलिखित प्रमाणीकृत रीति को निर्धारित किया।

नीदरलैण्ड : प्रमाणीकृत नीति के अन्तर्गत तत्वों, विन्दु मूल्यों और भारों की व्यवस्था—

तत्व	प्रति तत्व सामान्य अधिकतम बिन्दु संख्या	भार	सामान्य कुल अधिकतम बिन्दु
१	२	३	४
ज्ञान	८	५	४०
स्वतन्त्रता	७	६	४२
अन्यों से सम्पर्क	७	२	१४
सत्ता प्रयुक्त	७	२	१४
स्पष्टता	७	१	७
नैपुण्य	८	२	१६
कच्चे माल और यंत्रों से समायोजन	८	१	८
पद परिस्थितियाँ			
भारोत्तोलन	८	१	८
थकान स्थितियाँ	८	१	८
भारयुक्त ध्यान	८	१	८
वायुमण्डलीय तत्व	—	३	—
व्यक्तिगत जोखिम	८	१	८
असमान्य योग्यतायें	—	१	—
उत्तरदायित्व (तोड़-फोड़ करने की जोखिम)	८	४	३२

इस व्यवस्था की कुछ विशेषतायें हैं। इसमें 'निर्देशों के विवरण और प्रकृति के अन्तर्गत कार्य का सम्पादन किस प्रकार से होगा" इस रूप में परिभाषित स्वतन्त्रता और "विचार के लिये आधिक या कम समय लगाने की योग्यता" के रूप में परिभाषित स्पष्टता के तत्व इस व्यवस्था की विशेषतायें हैं। यह भी असामान्य है परन्तु पर्याप्त महत्व का है कि वायुमण्डलीय तत्व और असमान्य योग्यताओं के लिये कोई विशिष्ट अंक नहीं निर्धारित किया गया है। इस व्यवस्था का एक विशेष लक्षण यह भी है कि सम्पूर्ण व्यवस्था मारित है। ज्ञान के तत्व को बिखरे हुये तथ्यों के ज्ञान और परस्पर अनन्योआश्रित प्रश्नों के रूप में दो विभागों में बाँटा गया है। और इस दूसरे विभाग को पुनः सरल, कम सरल और कठिन सम्बन्धों में बाँटा गया है। इस रीति को अधिक लोचपूर्ण कहा जा सकता है, क्योंकि सर्वाधिक अंक बहुत कड़ाई से निर्धारित नहीं किये गये हैं। स्वीडन ने राष्ट्रीय योजना के विकास को प्राप्त करने में सतर्कता से यात्रा की है। राष्ट्रीय योजना को अन्तिम स्वरूप देने से पूर्व अनेक उद्योगों को सामूहिक समझौते करने के लिये प्रेरित किया गया था और उसके उपरान्त इस विषय पर राष्ट्रीय समिति ने अनुभवों को संग्रहित करके एक प्रमाणित पुस्तिका प्रकाशित की। इसी प्रकार इंग्लैंड और अमेरिका में भी विभिन्न उद्योगों और फर्मों के लिये पद मूल्यांकन की योजनायें बनायीं और उनका प्रयोग किया। इस विवरण से यह विदित होगा कि इस विषय पर अन्तर्राष्ट्रीय अनुभव अनेक रुचि कारक कोणों का विकास किया है परन्तु मूल्यों की प्राथमिकताओं और निश्चित निर्देशन की भावनाओं द्वारा उन पर प्रकाश डाला जाना अभी बाकी है। पश्चिमी विचार और व्यवहार में जो कमी है उसे भारतीय योगदान द्वारा पूर्ण किया जा सकता है।

भारतीय मनोविज्ञान की अनुभव सिद्ध और पूर्ण परीक्षित शाखा ने सामान्य विश्व की क्रियाओं को तीन भागों में बाँटा है। अर्थात वे जो शरीर, जीवन और मस्तिष्क से सम्बन्धित हैं। इस विशाल वर्गीकरण से संगति रखते हुये सर्व प्रथम वे पद या क्रियायें हैं जो मानवीय जीवन के लिये अत्यन्त आवश्यक हैं लेकिन जिनके सम्पादन में यन्त्रवत् और कम बुद्धि के प्रयोग की आवश्यकता होती है। इन पदों या कार्यों को करने के लिये मनुष्य को अपने पाँच सम्बेदक अवयवों के शारीरिक गुणों, शारीरिक शक्ति, हाथों, पैरों और स्नायुओं की शक्ति का प्रयोग करना पड़ता है। इन कार्यों के बीच कुछ में नेत्रों और देखने के प्रयत्नों के विभिन्न अशों की आवश्यकता होती है तो कुछ में वायु-मण्डलीय तत्वों के विचलनशील अंशों के कारण, जैसे तापमान, मौसमी परिवर्तन, ध्वनि, घ्राण, रात्रि के कार्य या भूमि अथवा समुद्र के ऊपर या नीचे किये जाने वाले कार्यों के कारण अन्यों की आवश्यकता होती है। इनके अतिरिक्त कुछ में श्रमिक को अपने शरीर

को विभिन्न स्थितियों में रखकर कार्य करना होता है और कुछ में उसे जीवन का खतरा, दुर्घटना, बीमारी इत्यादि का जोखिम उठाना पड़ता है। कुछ अन्य ऐसे कार्य हैं जिनमें गति, तत्परता, स्पष्टता, जीवट या अन्य ऐसे गुणों की आवश्यकता पड़ती है जो किसी खिलाड़ी या अंग सौष्ठव बनाने वाले व्यक्ति के गुण हैं। और कुछ ऐसे भी कार्य हैं जिनमें स्वच्छता, व्यवस्थित व्यवहार, मधुर आवाज, हाथों की नफाशत और स्त्रियोचित गुणों की आवश्यकता होती है। जैसे बच्चों के अस्पताल में बच्चों की देख-रेख के लिये। यह सारे गुण शरीर के गुण हैं और शारीरिक संस्कृति के प्रतिफल। कुछ ऐसे कार्य हैं जैसे सैनिक सेवा में जिनके लिए असामान्य दृढ़ता, जीवट, शक्ति और शारीरिक संघर्ष की आवश्यकता होती है। और कुछ ऐसे भी कार्य हैं जिनके लिये साधारण कुशलता की आवश्यकता होती है जैसे मोटर या एक सरल मशीन या यंत्र को चलाना। ऐसे पदों या कार्यों के लिये जिनमें शरीर के रख-रखाव और प्रशिक्षण की आवश्यकता होती हैं एक अंश तक श्रेणी विभाजन खोजा जा सकता है जिससे विभिन्न पद-अन्तरों का एक समुचित दृश्य प्राप्त हो सके। कार्य अध्ययन और कार्य सम्बन्धी अर्थशास्त्र के व्यवहार ने इस सम्बन्ध में अनेक अंशों में महत्वपूर्ण भेद स्थापित किये हैं जिनके सम्बन्ध में उत्पादकता पर विचार करते समय विचार करने का हमें अवसर मिलेगा। यदि उन्हें सामूहिक रूप से एक साथ रखा जाय तो एक पद-समूह बन जावेगा जिसे प्राथमिक मूलभूत महत्व का माना जा सकता है और उसके आधार पर एक राष्ट्रीय योजना में व्यवसाय सम्बन्धी अन्तरों के लिये एक मौमिक स्तर प्राप्त किया जा सकता है।

मानवीय मूल्यों की श्रंखला में इसके उपरान्त जीवन की शक्तियाँ हैं। आर्थिक भाषा में उन्हें एक व्यवसायी की गति या प्रेरणा, एक उत्पादक और प्रसारशील वृत्ति की फलोत्पादकता या पूर्णता, एक प्रावैधिक सेवा क लिये आवश्यक कुशलता पर अधिकार अथवा नियामक और आदेशात्मक प्रशासन, वायुमण्डलीय तत्वों की समझ और उनका निर्देशन, जीवन के सम्बन्धों और व्यवहारों में काम में आने वाली सहयोगी वृत्तियाँ, उत्तरदायित्व वहन करने की, उसे नापने की और उसका योग्य प्रतिनिधान करने की क्षमता, स्वच्छ लेखा प्रस्तुत करने की योग्यता, स्फूर्तियुक्त नेतृत्व करने की शक्ति और नियंत्रक शक्ति और वह सब शक्तियाँ जो एक क्रियाशील मनुष्य या न्याययुक्त व्यवसायी, व्यापारी, वैज्ञानिक, यांत्रिक और उपयोगी व्यक्ति बनाती है, कहा जा सकता है। इन शक्तियों के व्यायाम के सम्बन्ध में जिन पद सम्बन्धी तत्वों का प्रायः विचार किया जाता है वे विभिन्न प्रकार के उत्तरदायित्व को वहन करना है। जैसे निर्णय लेना, धन का संग्रह और उपयोग, विक्रयशीलता, वैज्ञानिक शोध के आधार पर उत्पादन लक्ष्यों का निर्धारण और उनकी प्राप्ति, सहयोग के आधार पर सहकार्य की वृत्ति और

व्यक्तियों का मनोबल बनाना, यन्त्रों, भौतिक उत्पादनों के प्रति उत्तरदायित्व, मनुष्यों की सुरक्षा और उनके कार्य के प्रति उत्तरदायित्व, विभिन्न प्रकार की कुशलताओं के प्रति प्रेरणा का प्रदर्शन, बदलती हुई परिस्थितियों के प्रति त्वरित समायोजन, मानवीय सम्बन्धों और सहकारी वृत्तियों को प्राप्त करने के लिये मुक्त बुद्धि, अन्य व्यक्तियों से कार्य कराने की सत्तात्मक क्षमता और निर्देशन, प्राविधिक, प्रशासनिक और व्यवस्थात्मक सेवा के गुण इत्यादि हैं। यह गुण मनुष्य के भीतर अनुभव प्रशिक्षण और समस्याओं के स्वतन्त्र रूप से सुलझाने से उत्पन्न होते हैं। इसके विपरीत यदि यह बातें न हों तो यह एक ऐसी नपुंशक नौकरशाही में बदल जायगी जिसमें निर्णय लेने की इच्छा और शक्ति नष्ट हो चुकी हो और जो केवल पूर्व सत्ता के उद्धरणों पर ही कार्य कर रही हो। इन कार्यों को करने के निमित्त एक निश्चित स्पष्टता, दृढ़ता, कल्पना, स्वप्रेरित स्नायुगत उत्तेजना से उन्मुक्त रह कर जोखिम उठाने की वृत्ति, अनुशासन और व्यवस्था की भावना, उद्देश्यों, शक्तियों, प्रवाहों और प्रति-प्रवाहों का विचार और लक्ष्यों और उनकी प्राप्ति इन्हीं जीवन धाराओं के माध्यम के द्वारा ही सम्भव है। यह मानवीय गुणों का वह समूह जो ऊपर वर्णित शरीर और शारीरिक गुणों की संस्कृति से भिन्न है। हमारे मनोवैज्ञानिक विचार प्रणाली के अनुसार ये जीवन की शक्तियाँ हैं, शक्ति की प्रेरणायें हैं। किसी भी पद पर कार्य करने वाले व्यक्ति को जो इन शक्तियों का प्रयोग कर रहा हो, पूर्व वर्णित शक्तियों के प्रयोग करने वाले से उत्कृष्ट मानना चाहिये। और उन्हें पिछले वर्ग के व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक वेतन और सम्मान दिया जाना चाहिये। उनका योगदान उत्पादन और समृद्धि के लिये अधिकतम होता है। यथार्थ में जो निर्णय वे लेते हैं या जो कार्य वे करते हैं। उत्पादकता के मापदण्डों को उठाने में, वे केन्द्रीय महत्व के हैं। राष्ट्रीय निर्माण में वे व्यवहारिक नेता हैं। यदि पहिले वर्ग के व्यक्तियों के वेतन-अन्तरों को बनाने में गणतीय-बृद्धि का व्यवहार किया जाय जो कि अपने शरीर के गुणों का प्रदर्शन करते हैं तो दूसरे प्रकार के वर्ग का सम्मान ज्यामितिक बृद्धि के अनुसार वेतन बृद्धि में किया जाना चाहिये। ऐसे व्यक्ति न केवल अपने कार्य के द्वारा अधिक वित्तीय पुरस्कार के लिये अपने को योग्य बनाते हैं वरन् वे उस सामान्य संग्रह में उससे अधिक योगदान देते हैं जितना कि वे इस जीवन सम्बन्धी शक्ति के मापदण्ड में स्वयं ऊँचे चढ़ते हैं। इस वर्ग में उच्चतम वित्तीय प्रतिष्ठा प्राप्त होनी चाहिये। तृतीय वर्ग जिसका हम सुझाव दे रहे हैं यद्यपि इस दूसरे वर्ग से अधिक प्रतिष्ठित है। उसे वित्तीय प्रेरणायें देने से मानव के भारतीय मनोवैज्ञानिक वर्गीकरण के अनुसार मध्य स्तर से सम्पूर्ण सार ही निकल जावेगा। वेतन के अन्तरों की राष्ट्रीय नीति में इन प्रथम दो वर्गों के बीच न्यूनतम और अधिकतम वेतन क्रमों में १ : १० का अनुपात प्राप्त किया जाना चाहिये जो कि प्रगति के सीधे मार्ग पर यात्रा करने के

साधारण क्रम को अपने शारीरिक और जीवन्त मस्तिष्क के द्वारा बनाये रखते हैं।

जीवन की शक्तियों से मस्तिष्क के गुणों की ओर जैसे जैसे हम मानवीय मूल्यों की श्रेणी में चढ़ते जाते हैं हमारे सम्मुख एक बिल्कुल ही बदला हुआ विचार प्रवाह उपस्थित हो जाता है। क्योंकि इस ऊंचाई पर मूल्यों की श्रेणी में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन हो जाता है। वह मस्तिष्क का उचित क्षेत्र है जहां मनुष्य के भीतर का विचारक सत्य और न्याय की खोज में और सुन्दरता और अच्छाई को प्राप्त करने में स्वयं ही आह्लादित हो जाता है और अपने जीवन की क्रियाओं और उसके चारों ओर के वातावरण को यह प्रकाश देकर स्वयं संतुष्ट हो जाता है। मानव व्यक्तित्व का यह परिवर्तन जीवन की शक्तियों से अत्यन्त अल्प सम्बन्ध रखता है। संस्कृति के श्लोक में यह ठीक ही कहा गया है कि ऐसा वर्ग उपासना के केन्द्र बिन्दु के रूप में धन को नहीं देखता परन्तु मौलिक वस्तु के रूप में सन्तोष की प्राप्ति चाहता है। इसमें धनी व्यक्ति से कहा गया है :—

वयमिह परितुष्टाः वल्कलैः त्वम् दुकुलैः।
सम इह परितोषो निर्विशेषो विशेषः॥

स नु भवतु दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला।
मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः॥

यदि अधिक दूर तक जांय तो भी द्वितीय वेतन आयोग की बात से सहमत होना कठिन नहीं होगा जो कि अध्याय ८ पैरा १९ में कहता है कि "सार्वजनिक सेवा स्वयं में अपना पुरस्कार है। वहां पर प्रतिष्ठा है और सम्मान है—वहां पर अपनी योग्यताओं के सतत् और पूर्ण प्रयोग के लिये अवसर है और लोकनीतियों और योजनाओं को स्वरूप प्रदान करने में अपने प्रभाव का व्यायाम करने का अवसर है—जो इनमें प्रवेश करते हैं वे जनता के सेवक हैं व्यक्तियों के नहीं। अनेक पश्चिमी देशों में, उसके विश्वविद्यालयों के सर्वश्रेष्ठ विद्यार्थियों में से एक बड़ा भाग अल्प मौद्रिक पुरस्कारों के रहते हुए भी शैक्षणिक जीवन अपनाता है और हम विश्वास करते हैं कि इसी प्रकार के अभौतिक कारणों से भारत की सार्वजनिक सेवा आवश्यक क्षमता और योग्यताओं वाले नवयुवकों को आकर्षित करने में असफल नहीं होंगे।

यह मस्तिष्क का एक सुन्दर मोड़ है जबकि वह उन भौतिक इच्छाओं के घेरे से निकल जाता है जिसे कि जीवन की सामान्य शक्तियाँ बढ़ाती हैं। यह मोड़ हमें एक अध्यापक, एक वैज्ञानिक, एक सामाजिक कार्यकर्ता, एक न्यायाधिपति या किसी भी

मानवीय ज्ञान के एक विभाग के विशेषज्ञ अथवा एक यश प्राप्त कलाकार, एक दार्शनिक एक नियोजक या बौद्धिक में देखने से मिल सकता है। अपने उत्कर्ष के इस स्तर पर सेवा का एक विशिष्ट भाग मनुष्य को छूता है परन्तु फिर भी वह भौतिक आवश्यकताओं और इच्छाओं से मुक्त नहीं हो पाता। वह अपने सद्गुणों के व्यवहार और गुणों के विकास से सन्तुष्ट रहता है, परन्तु उसे उन सुविधाओं की आवश्यकता रहती है जो इस प्रकार के व्यवहार या विकास को भौतिक चिंताओं से मुक्त रख सकें। अतः एक अध्यापक जिसे अपने पेशे से प्रेम हो अपना सर्वोत्तम दे सकता है यदि उसे एक निर्वाहकारी वेतन मिलता हो और अपने और अपने परिवार और अपने बच्चों के कल्याण की आवश्यकताओं की चिन्ता से मुक्त हो जाय। ऐसी स्थिति में उसे भौतिक धन की अपेक्षा मस्तिष्क की समृद्धि में अधिक आनन्द आने लगता है जिसका वह अपने विद्यार्थियों में निर्माण कर सकता है। इसी प्रकार एक वैज्ञानिक, एक व्यवसायिक, प्रशासक अथवा एक सैनिक, सेनापति ही अपने वेतन की तुलना करने की चिन्ता नहीं करता। यदि उसे शोध करने के लिये एक शान्त स्थान मिल जाय, अपने कार्य को चलाने के लिये सुविधायें मिल जावें, अपने कार्य को प्रकाशित करने की व्यवस्था मिल जावे और उन व्यक्तियों से संस्तुति और सम्मान मिल जावे जिनके अन्तर्गत वह कार्य करता है तो वह संतुष्ट रहेगा। इन गुणों का विकास पर्याप्त वेतन-अंतरों के रूप में अधिक धन फेंक कर (यद्यपि इस स्तर पर भी मुद्रा के मूल्य अनुपस्थित नहीं रहते) नहीं किया जा सकता है जितना कि प्रतिष्ठा और सम्मान की भावना से किया जा सकता है जोकि वे और दूसरे अपने कार्य और व्यवसाय के लिये रखते हैं। इन सेवाओं की सुन्दरता, प्रतिष्ठा के प्रेम पर आधारित है जो उन्हें अपने कार्य में अच्छाइयों की ओर उठाती है और बुराइयों की ओर गिरने नहीं देती। यश और सामाजिक स्वीकृति के लिये वे शुद्ध और उच्च कार्य के आदेश को कलुषित होने नहीं देते और उच्च और गम्भीर विचार, आदर्श चरित्र, सत्य और स्पष्टवादिता के मूल्य, मस्तिष्क को खुला रखना और सतत गवेषणा करने वाली बुद्धि, व्यक्ति में पूर्ण विश्वास, अपरवर्जीय केन्द्रण और सम्प्राप्त प्रकाश को विगलित नहीं होने देते। मस्तिष्क में इस प्रकार का मोड़ आने पर बुद्धि प्रमुख रूप से विचारों में आबद्ध रहती है। और विचारों का अध्ययन या जीवन का अध्ययन और परावर्तित वृद्धि के विकास और सूचनाओं में लगी रहती है। स्वभाव में सन्तुलन-धैर्य, स्थिरता और शान्ति से निर्माण होता है। फिर परावर्तन होने लगता है और विकास के सार्वभौमिक नियमों की खोज और परीक्षण के आधार पर परिस्थितियों को सम्भालने की क्षमता जाग जाती है। और इस प्रकार के व्यक्तियों की यह विशेषता है। इस वर्ग के व्यक्तियों को विभिन्न पदों के स्तरों में हम अध्यापक और प्राध्यापक, शोधकर्ता, वैज्ञानिक, कलाकार, लेखक, कवि, लोकसेवक (वास्तविक अर्थ में निर्माणकर्ता,

चित्रकार, चिकित्सक, प्रशासक इत्यादि अर्थों के रूप में बांट सकते हैं। यह सब मिलकर अपने कार्यों से इतर एक अन्य पद-समूह बनाते हैं। ऐसे व्यक्तियों को अपने कार्य क लिए आवश्यक न्यूनतम शिक्षा की आवश्यकता होती है, वे अपने विषय का ज्ञान रखते हैं, उनमें विविधता, विवेक, न्यायपूर्णता, तर्कपूर्ण सगति कठिन बातों को ग्रहण करने की शक्ति आदि होती है जो उनके पद और कार्य के लिए समुचित होती है। वे ऐसे बहुत विवरणों के प्रति सजग रहते हैं जिनको अन्य लोग प्राय: उपेक्षित छोड़ देते हैं। वे बारीकी कुशलता आदि का ऐसा अनपात व्यवहार में लाते हैं जिनका प्रयोग यदि अधीर व्यक्तियों द्वारा किया जाय तो सम्पूर्ण कार्य ही बिगड़ जावेगा। वे मानव समाज के वास्तविक निर्माता हैं, नये और विस्तृत यत्रों, शक्तियों और अनुभूतियों के उत्पादक हैं जोकि संपूर्ण मानव सभ्यता को नयी दिशाओं में प्रवाहित कर सकते हैं। वे व्यावहारिक कार्य सम्पादन में प्रारम्भ में ही देख सकते हैं कि किस गलत प्रवृत्ति का प्रवेश हो रहा है। और बिना उनके मार्गदर्शन के कार्यवाहक आदि अपनी शक्तियों का प्रयोग करें तो अधिक गोलमाल या अपने कार्यों के कारण तोड़-फोड़ उत्पन्न कर सकता है या अंधा होकर सीधा ही टकरा सकता है। ऐसे व्यक्ति बाहर से कम व्यस्त दिखाई पड़ते हैं। और कम उत्पादक मालुम होते हैं। परन्तु उनकी उपस्थिति और कार्य, कल्पना शक्ति वाले कार्यवाहकों में दस गुनी स्फूर्ति भर सकते हैं और विश्वास जगा सकते हैं जिसके बिना वे मूर्खों के समान निष्प्रभावी हो जावेंगे। ऐसे व्यक्तियों का स्थान समाज में बहुत ऊँचा है। उनके कार्य भविष्य के लिए हैं न कि वर्तमान के लिये। और उत्पादकता की सामान्य परीक्षायें उन पर लागू नहीं होतीं वे मानव संस्कृति की केवल पूरक सेवायें अथवा आर्थिक विचार की आधार शिलायें नहीं हैं, वरन वे हैं जोकि मानव के भाग्य को बदल देते हैं और जाति के गुण और स्वभाव को निर्धारित करते हैं। सामूहिक उत्कर्ष के इस युग में इस क्षेत्र को जनता की प्रगति के लिये अत्यन्त महत्व है परन्तु फिर भी उनकी सेवाओं की प्रकृति ऐसी है कि उसकी नाप तौल केवल आर्थिक आधार पर नहीं की जा सकती जैसा कि अन्य वर्णित दो वर्गों के लिए सम्भव है। इस वर्ग के कार्यकर्ताओं के लिए सही प्रेरणा सम्मान और प्रतिष्ठा की भावना की है और हमें ऐसे मार्गों और साधनों का अन्वेषण करना चाहिए जो इन व्यवसायों में इनका निर्माण कर सकें और इनकी विजय का विशाल प्रमाण पर उत्सव मना सकें। राष्ट्र को चाहिए कि इन सेवाओं में गौरव का गर्व उत्पन्न करें और इनमें से प्रत्येक को जो कुछ उसको देय है प्राप्त करा सके। इस प्रकार से इन सेवाओं के सन्दर्भ में वेतन, प्रत्यन्तरों के प्रति दृष्टिकोण ही बदल जाता है और प्रतिष्ठा की श्रेणी उनका स्थान ग्रहण कर लेती है। इस पद-समूह को समाज के द्वारा द्वितीय पद-समूह से ऊँचे क्रम में रखना चाहिये यद्यपि वेतन के सम्बन्ध में उनकी तुलना न की जाय। इन वर्गों में वेतन क्रम

का आधार भूत स्तर काफी ऊँचा रखा जाना चाहिये जिससे उन्हें अच्छी जीवन व्यवस्था प्राप्त हो। परन्तु प्रथम वर्णित दो वर्गों के समान वेतन प्रत्यन्तर इतने अधिक भाव प्रवण नहीं बनाये जाने चाहिए। फिर भी सत्ता और सम्मान उनके ऊपर पूर्ण श्रद्धा से लादना चाहिए।

मानवीय प्रेरणा की श्रेणी में व्यक्तियों का सर्वोच्च वर्ग वह है जिनके अन्दर इस संसार में वृत संकल्प की भावना हो। ऐसे व्यक्ति मुद्रा और प्रतिष्ठा की कौड़ी बराबर चिंता नहीं करते। वास्तव में यदि उनके कार्य की नाप-जोख भौतिक मापकों के द्वारा की जाय तो वे अपने को अपमानित अनुभव करते हैं। हमने ऐसे व्यक्तियों का वर्णन न्यूनतम मजदूरी के सम्बोध पर विचार करते हुए किया था वे गरीबी और अपयश के द्वारा लादी गई कठिनाइयों की उपेक्षा करते हुए कार्य करते हैं और प्रायः देखा गया है कि उनके जीवन रहते हुए जनता और समाज उनके मूल्यों को परख नहीं पाते। ऐसे व्यक्ति किसी मानवीय अभिकर्ता या संस्था के द्वारा कार्य में नहीं लगाये जाते परन्तु वे स्वयं इनमें से किसी का उपयोग करते हैं या छद्मवेश धारण करके कार्य करते हैं। यह उनके लिए है कि मानव समाज व्यक्तिगत स्वतन्त्रा के मूल्यों की रक्षा करे। क्योंकि यह तभी सम्भव है कि वह इन स्वतन्त्र आत्माओं का लाभ उठा सके। वे मानवीय सेवायोजन के सम्बोध से परे हैं। और मानवता के सच्चे स्वामी हैं। अन्य सेवायोजक जो व्यक्तियों को रोजगार में रखते हैं, वास्तव में एक या दूसरे प्रकार का कार्य करते हैं, जिसका माप पूँजी की मात्रा, साहस, उद्योग विज्ञान अथवा अन्य गुण के द्वारा किया जा सकता है। जिनकी वह आयोजना करते हैं और जिन्हें वेतन प्रत्यान्तरों के सम्बोध के अन्तर्गत रखा जा सकता है, जिससे हमारी मजदूरी नीति अपने प्रभाव में राष्ट्र की आय नीति बन सके। क्योंकि यदि मजदूरी नीति या मजदूरी प्रत्यान्तर आय प्रत्यन्तरों से भिन्न रखे जांय जोकि समाज में प्राप्य है तो बाजार की शक्तियां मानवीय व्यवहार पर प्रभाव डालने लगती हैं, जिससे सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था विकृत हो जाती है। मजदूरी प्रत्यान्तरों पर जो दृष्टिकोण हमने प्रस्तुत किया है, वास्तव में सक्रिय प्राकृतिक प्रक्रियाओं का विश्लेषण और उपभोग है। इस प्रकृति के अपराध में तीन भुजायें हैं– वस्तु, जीवन और मस्तिष्क। और इन गुणों की महत्वपूर्ण प्रवृत्तियों के अनुसार समाज को उत्तर देना चाहिए। यदि समाज अपने उद्देश्यों की एक संगतिपूर्ण प्राप्ति करना चाहे। यह ज्ञान भूतकाल के भारतीय विचारकों को पूर्ण रूप से विदित था जिन्होंने ऐसा अर्थ सामाजिक ढांचा उत्पन्न किया जिसमें शताब्दियों के आक्रमणों को सहन कर पाया। अब आवश्यकता इस बात की है कि उस ज्ञान को आधुनिक शब्दों में आधुनिक परिस्थितियों के अनुकूल फिर से प्रस्तुत किया जा सके। यह योग्य होगा यदि राष्ट्रीय

श्रम आयोग जीवन के इन स्थायी मूल्यों की पहिचान कर सके, जिन्हे भारतीय ऋषियों ने अनेक पीढ़ियों में देखा और राष्ट्र को एक बार फिर मजदूरी प्रत्यन्तरों और प्रतिष्ठा प्रत्यंतरों की एक समन्वित व्यवस्था के माध्यम से मानवीय मूल्यांकन और पुरस्कार की व्यवस्था के सही मापदंड प्रदान करे, जिससे भारत में मानवीय प्रयत्नों को अत्यन्त आवश्यक दिशा प्राप्त हो सके।

वेतन नीति Wage Policy

श्रम से सम्बन्धित सभी प्रश्नों में मजदूरी नीति का प्रश्न सबसे अधिक भावुक है। राष्ट्रीय श्रम आयोग के द्वारा प्रचारित प्रश्नावली में ठीक ही कहा गया है कि इस विषय को अर्थनीति के संग्रथित पृष्ठभूमि में ही यथार्थतया लिया जा सकता है। जिसमें पूंजी निर्माण की आवश्यकताओ और उद्योग के प्रतिफलित विकास का पूर्ण ध्यान रखा गया हो और जिसमें मजदूरी नीति, साहसी के लाभ और उपभोक्ताओं की प्राप्ति के सामूहिक प्रभावों का अध्ययन किया गया हो और जो मजदूरियों, आय और मूल्यों के उद्देश्यों और क्षेत्रों का परीक्षण अर्थव्यवस्था के विकास के सन्दर्भ में करती हो। इसे अंत में मजदूरी के ढांचे में क्षेत्रीय सन्तुलन के निमित्त निर्देशक रेखायें प्रस्तुत करनी चाहिये और यह स्पष्ट करना चाहिए कि इस नीति को लागू करने के लिये वर्तमान संस्थात्मक व्यवस्था में कौन से परिवर्तन करना आवश्यक होगा। स्पष्टता के लिये हम जोड़ सकते हैं कि वास्तव में उद्देश्य केवल यह नहीं है कि एक निश्चित समय में कार्य करने वाले श्रमिकों के लिये केवल एक नीति बतलायी जाय, वरन् यह भी कि एक राष्ट्रीय अर्थनीति प्रस्तुत की जाय जो यथोचित नियोजन, संगठन और प्राविधि के माध्यम से देश के संसाधनों का पूर्ण उपयोग करते हुए जनता को पूर्ण रोजगार प्रदान कर सके और उसके सन्दर्भ में राजनीतिक तत्वों का यथोचित विचार करते हुए मजदूरी नीति का पुनर्निर्धारण किया जावे।

यह उत्तम होगा यदि हम विषय का विश्लेषण ऐसे दृष्टिकोण से कर जो हमारे व्यक्तियों को पूर्ण रोजगार प्रदान करने की आवश्यकता पर बल देता है। हमारे देश में करोड़ों नवयुवक वर्तमान समय में अपने जीवन के अनेक नियामक वर्ष निठल्ले रहकर अथवा अनुपयोगी बनकर अथवा छोटी नौकरियों पर काम करके बरबाद कर देते हैं जिनमें पुनः अपनी योग्यता और कौशल का पूर्ण उपयोग करने के लिये अवसर नहीं मिलता। देश में यह स्थिति सभी ओर फैल गई है, जिसके कारण न केवल अत्यन्त कठिनाई वरन् विशाल मात्रा में भग्नाशा मजबूरी और दारिद्य का वातावरण बना है।

जो कहीं-कहीं भुखमरी तक भी पहुंचा है। इस समस्या के तत्काल निदान की समस्या सर्व सम्मति है। हमारे युग की यह एक सामाजिक चेतावनी है। यदि जनता ने इस परिस्थिति के विरुद्ध पर्याप्त विद्रोह नहीं किया तो उसका कारण यह है कि गहरी और तर्कयुक्त संस्कृति ने उसे यह पढ़ाया है कि अपने नेताओं और परमात्मा पर विश्वास रखो और शान्ति पूर्वक हानि उठाने जाओ। यहां तक कि यदि मृत्यु आ जाये तो उसे भी परमात्मा की इच्छा समझो। तथा प्रेम, सौहार्द्र और अच्छे विचार, जाति के नेताओं के प्रति जगाने का एक साधन मानो। इतिहास इस पीढी और इसके नेताओं को क्षमा नहीं करेगा, यदि हम आज भी इस समस्या के प्रति सजग नहीं होते और इसके तत्काल निदान के लिये महत्वपूर्ण और यथार्थवादी कदम नहीं उठाते।

सन् १९६१ की जनगणना के अनुसार कुल जनसख्या ४३९ मिलियन थी जिसमें २२६ मिलियन पुरुष और २१३ मिलियन स्त्रियाँ थीं। इनमें से १२९ मिलियन पुरुष और ५९.५ मिलियन स्त्रियाँ श्रमिकों के रूप में पंजीकृत थीं। श्रमिकों के रूप में पंजीकृत इन वर्गों के निम्नलिखित उपवर्ग बेरोजगारी या अर्धरोजगारी के किसी भी भारतीय विद्यार्थी के लिए विशेष महत्व को हैं।

उपवर्ग	श्रमिकों की संख्या मिलियन में	
	पुरुष	स्त्रियाँ
१–कृषक	६६.५	३३
२–कृषि श्रमिक	१७	१४
३–घरेलू उद्योग	७	५
योग	९०.५	५२

यह सुविदित है कि इन उपवर्गों में प्रत्युत्तर सम्बन्धी अनेक भूलें हैं। और कार्य के ऋतु जनित और रोजगार के अल्प क्षेत्र के कारण वे पूरी तरह से सेवायोजित नहीं होते। अतः अब केवल ३९.५ मिलियन पुरुष और ७.५ मिलियन स्त्री श्रमिक जनता बचती है जो निर्माण, विनिर्माण, व्यापार व वाणिज्य, परिवहन, संग्रह एवं संचार, खदान व उत्खनन, पशुपालन, वन, मत्स्य उद्योग, शिकार एवं बागान, उद्यान तथा सम्बन्धित कर्मों में लगे हुए हैं। यदि हम इन वाद के वर्गों में लगे हुए श्रमिकों को

औद्योगिक श्रमिक माने तो हमें पुरुषों के लिए १७ % और स्त्रियों के लिए ३.५ % का निम्न अनुपात प्राप्त होता है। यह देश के औद्योगीकरण की वर्तमान स्थिति है। यदि हम अधरेलू उद्योगों, व्यापार, व्यवसाय या सेवाओं में लगे ६२०४५.५ मिलियन व्यक्तियों के वर्गीकरण पर विचार करें तो औद्योगीकरण की प्रगति और अधिक स्पष्ट हो जाती है (सारिणी १.३२ भारतीय श्रम सांख्यकी)। ४५.५ मिलियन व्यक्तियों में से १५.८ पुरुष और ४.६ मिलियन स्त्रियां एकाकी श्रमिक अथवा पारिवारिक श्रमिक के रूप में पंजीकृत हैं जिससे केवल २५ मिलियन व्यक्ति औद्योगिक संस्थाओं में लगे हुए बच रहते हैं। इन २५ मिलियन व्यक्तियों का विभाजन यदि सेवायोजक और कर्मचारियों के रूप में किया जावे तो क्रमशः २ मिलियन व २३ मिलियन आते हैं जो सेवायोजक और श्रमिक का अनुपात १–११.५ बतलाता है। यह महत्वपूर्ण है कि जनगणना में सेवायोजक के रूप में घरेलू उद्योग में किसी भी उपवर्ग का उल्लेख नहीं है। इसमें साधारण तौर पर केवल यह कहा गया है कि घरेलू उद्योग में लगे हुए १२ मिलियन व्यक्तियों में १ मिलियन कर्मचारी हैं और शेष दूसरे। ३३ करोड़ गांव में रहने वाले व्यक्तियों में नगर में रहने वाले ८ करोड़ की अपेक्षा यह अंक साधारणतया ठीक हैं। परन्तु १९६३–६४ के वर्तमान मूल्यों पर आधारित प्रति व्यक्ति ३७० रु० की राष्ट्रीय आय जीवन निर्वाह के स्तर को त्वरित औद्योगीकरण के द्वारा बढ़ाने की समस्या का आश्चर्य में डालने वाला अनुपात उपस्थित करती है।

यह रुचिकारक होगा कि इन अंकों की तुलना अन्य देशों के अंकों से इसलिये की जाय कि यह जाना जा सके कि किस प्रकार आर्थिक क्रिया औद्योगीकरण के साथ बदलती है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की रिपोर्ट नं० ६७ की सारिणी नं० ४ से लिये गये निम्नलिखित समंक इस बात को स्पष्ट करते हैं।

देश	वर्तमान वर्ष जिसके समंक प्राप्य हैं	कुल श्रमशक्ति का प्रतिशत		
		कृषि	उद्योग	सेवायें
आस्ट्रेलिया	१९५४	१३	४१	४६
बल्गारिया	१९५६	६५	१९	१६
कनाडा	१९६२	११	३६	५३
चेकोस्लोवाकिया	१९६०	२६	४६	२८
फ्रान्स	१९६२	२१	३९	४०
जर्मनी (F.R.)	१९६१	१४	४९	३८

देश	वर्तमान वर्ष जिसके समंक प्राप्य हैं	कुल श्रमशक्ति का प्रतिशत		
		कृषि	उद्योग	सेवायें
जर्मनी (ब्रिटेन)	१९६१	४	४९	४७
हंगरी	१९६०	४०	३५	२५
इटली	१९६२	२७	४०	३३
जापान	१९६१	४५	२४	३१
मैक्सिको	१९६०	५५	१९	२६
पोलैण्ड	१९६०	४८	२८	२४
स्वीडेन	१९६०	४१	४५	४१
मिश्र	१९६०	५८	१२	३०
अमेरिका	१९६०	७	४०	५३
रूस	१९६१	३७	३३	३०

उपरोक्त प्रत्येक देश में प्रतिशत और कृषि में लगी हुई निरपेक्ष संख्या क्रमशः गिरती गई है। यह विशेष रूप से दृष्टव्य है कि अमेरिका में केवल कृषि में ४.५ मिलियन लोग जुट कर (अपनी श्रम शक्ति का ७%) समस्त विश्व के खाद्यान्न की कमी को दूर करने का स्वप्न देख सकते हैं। यह समंक यह भी बताते हैं कि किस प्रकार से तेजी से बढ़ने वाली बचतें विशाल ढांचे के परिवर्तों की व्यवस्था कर सकती हैं। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि हम भारत की श्रम शक्ति के वर्गीय विभाजन में किसी रंगमंचीय परिवर्तन का लक्ष्य बनावें। हमारे पास कृषि में ही बहुत कुछ करने के लिए बाकी है। सन् १९६०-६१ में अपने १५२ मिलियन हैक्टर के कुल खेतिहर क्षेत्र में से हमने केवल १९.५ मिलियन हैक्टर पर बुवाई एक से अधिक बार की। यदि इसमें खेती योग्य बेकार भूमि के २० मिलियन हैक्टर को जोड़ दिया जाय और अपने देश में निम्न औसत उपज का विचार किया जाय तो हम देख सकेंगे कि समस्या की प्रकृति क्या है और इसे किस प्रकार हल किया जा सकता है। वन और उसके उत्पादक, खनिज पदार्थ, पशु व मत्स्य धन के सम्बन्ध में और भी अधिक कहा जा सकता है। हमारा देश प्राकृतिक संसाधनों में निश्चित ही पीछे नहीं हैं। तब यथार्थ समस्या कहां है? हमारे पास संसाधन हैं और व्यक्ति भी। और उत्तर प्राप्त करने के लिये हमें केवल खोई हुई कड़ियों पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए।

यह एक सुपरीक्षित आर्थिक विकास का सिद्धान्त है कि उत्पादकता और प्राकृतिक संसाधनों का मूल्य, प्राविधिक प्रयोग, संगठन अथवा उत्पादन की रीति, कुशलता और सरकार की नीति के द्वारा और सामान्य रूप में समाज के संगठन के द्वारा प्रभावित होते हैं। किसी भी संसाधन के अन्तर्निहित गुण उसको उत्पादन में भाग लेने के लिये और इस प्रक्रिया में मूल्यवान बनने के लिये प्रेरित नहीं करते। इसके लिए यह आवश्यक है कि सहभागी और पूरक संसाधन (उत्पादन के साधन) प्राप्य हों और प्रत्युत्पन्न उत्पादन के लिये एक बाजार भी हो। जब आवश्यक और पहिले सहकार्य न करने वाले उत्पादन के साधन जैसे पूंजी का प्रयोग, संगठन और प्राविधिक कौशल की आपूर्ति की जाती है तो प्राकृतिक संसाधनों में आर्थिक मूल्य और उपयोगिता का जामा पहिना दिया जाता है। मानवीय शक्ति उसके गुण और सम्पन्नता का प्रयोग इन सहकारी तत्वों का प्रयोग प्राप्त कराता है।

इन सहकारी तत्वों में से पूँजी की आवश्यकता को भारतीय नियोजको ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है। परन्तु उसी विश्वास से यह नहीं कहा जा सकता कि संगठनात्मक और प्राविधिक कौशल की आवश्यकता को उसी प्रकार महत्वपूर्ण माना गया है। यदि यह बाद की वस्तुओं को हमारी योजनाओं के बनाने और चलाने में महत्व दिया गया होता तो हमें वर्तमान के पूर्ण अनुपस्थित श्रम शक्ति उपयोग और प्रशिक्षण परियोजनाओं की अपेक्षा एक अर्थपूर्ण व्यवस्था प्राप्त होती। यह स्वीकार नहीं किया गया है कि मानवीय तत्व भी पूँजी का एक स्वरूप है। दूसरे शब्दों में आर्थिक भाषा में पूँजी के प्रयोग का जो अर्थ समझा जाता है या इन संस्थागत प्रवाहिकाओं के द्वारा अर्थ लगाया जाता है उसके कारण औसत भारतीय नियोजकों और सरकार के द्वारा पूँजी निर्माण के प्रति उत्साह को अविश्वास से देखने लगा है। देश के लिए एक मजदूरी और रोजगार नीति बनाते समय पूँजी निर्माण की आवश्यकता और न्याय का बाजा बजाना पर्याप्त नहीं होगा जिसके अन्तर्गत पूँजी और श्रम के लेखामूल्य दिखलाये जाते हैं। अब यह आवश्यक होगा कि औसत व्यक्ति पूँजी के विशिष्ट उपयोगों का अर्थ समझे जोकि वह अपने निम्न स्तर के उपभोग को रोक कर या उसकी वृद्धि को रोक कर प्राप्त करता है।

इसे करने का उत्तम उपाय यह होगा कि पूँजी के उपयोग का निर्देशन इस प्रकार से किया जाय जिससे मनुष्यों को बढ़ता हुआ रोजगार दिया जा सके और वह भी शीघ्र। यह क्रिया एक सन्तोष के रूप में महत्वपूर्ण है। परन्तु यह आवश्यक कहा जायेगा कि सेवायोजन की नीतियों की यथार्थ सफलता इस बात पर निर्भर होगी कि

वे किस मात्रा में राष्ट्रीय आय और उत्पादन में वृद्धि करते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय श्रमसंगठन ने आर्थिक नीति के उद्देश्यों को निम्नलिखित रूप में लिखा है :—

प्रत्येक आर्थिक उत्पादक रोजगार निम्नलिखित परिवर्तन कर सकता है—

(अ) आवश्यकता वाले वर्गों में आय को बढ़ाना जिससे वे आर्थिक विकास के लाभों में अधिक हिस्सा प्राप्त कर सकें।

(ब) इस बात की सुरक्षा करना कि आर्थिक विकास के लिये अधिक से अधिक मानवीय क्षमताओं का उपयोग किया जा सके।

(स) इस बात की सुरक्षा करना कि समाज के आर्थिक जीवन में सभी का योगदान हो सके और भग्नाशा की भावना और असफलता का भाव दूर रखा जा सके जो बेरोजगारी और गम्भीर अर्ध रोजगारी से उत्पन्न हो सकते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कान्फ्रेंस १९६१ के सेवायोजन नीति सम्बन्धी प्रस्ताव ने सरकार को प्रभावित किया कि "सामाजिक और आर्थिक नीति के प्रमुख लक्ष्य के रूप में पूर्ण उत्पादक और स्वतन्त्र रूप से चुना गया रोजगार रखा जाय जिस लक्ष्य में अन्य बातों के साथ जीवन निर्वाह के उच्च स्तर भी सम्मिलित हैं और निम्नलिखित अर्थ में समझा जाय।

(१) प्रत्येक व्यक्ति के लिये जो काम ढूंढ़ रहा है, काम हो।

(२) जो पद प्राप्त हों वे जहां तक सम्भव हो, उत्पादक हों।

(३) रोजगार के चुनाव की स्वतन्त्रता हो और प्रत्येक श्रमिक को ऐसे कार्य में जिसके लिये वह पूर्ण रूप से उपयुक्त है जाति, लिंग, विचार, आयु और जन्म के विचारों से रहित अपने प्राप्त कौशल और प्राकृतिक गुणों के आधार पर चुने जाने और उनका प्रयोग करने का पूर्ण अवसर मिले।"

उपरोक्त सेवायोजन लक्ष्यों का सुझाव देते समय अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन यह पूर्ण रूप से समझता था कि उनको किस प्रकार से अन्य सामाजिक और आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति से जोड़ा और समन्वित किया जाय। सामाजिक उद्देश्य, उपभोग के पुनर्वितरण अथवा अधिक समृद्ध वर्गों से गरीब वर्गों की उपभोग के वितरण से सबसे अधिक सम्बन्धित है। आर्थिक विकास की वृद्धि आर्थिक उद्देश्य है, जिससे विनियोग की दर

अति निकट से सम्बाधित है । यह स्पष्ट है कि यदि नवीन कार्य में लगे कर्मचारी अपने उत्पादन से अधिक अपने उपयोग को बढ़ा लें तो यह अतिरेक या तो बिनयोग या किसी दूसरे के उपभोग के खर्चों पर होगा । यह बाद की बात यद्यपि श्लाघ्य है परन्तु इसे प्राप्त करना कठिन है । क्योंकि उच्च आय और धन के वर्गों पर लगाये गये कर जिनसे इन उद्देश्यों की पूर्ति हो सकती है, प्रायः उपभोग की अपेक्षा बचत को कम कर देते हैं । भारत का अधुनातन अनुभव इस भय को स्पष्ट करता है ।

इस आवश्यकता का पूर्ण ध्यान देते हुए अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने सेवायोजन नीति के लिये निम्नलिखित सिद्धान्त बताये हैं :—

(१) प्रत्येक देश के मानवशक्ति के उपभोग की एक नीति होना चाहिए जिसके लक्ष्य स्पष्ट हों और जिन्हें प्राप्त करने के लिये एक क्रियाशील योजना हो ।

(२) योजना में मानवीय क्षमताओं के विकास के लिए दीर्घकालीन उद्देश्य और यंत्र विशेष रूप से शिक्षा और प्रशिक्षण सम्मिलित होने चाहिये ।

(३) इसमें एक विकासशील अर्थव्यवस्था के सतत् उत्कर्ष के लिये सामान्य प्रकृति के उद्देश्य और साधनों की व्यवस्था होनी चाहिये । इसमें ऊंचे अंश में श्रम प्रचलन के विकास के लिए और बदलती आवश्यकताओं के प्रति श्रम शक्ति के प्रभावी समायोजन के लिए लक्ष्यों और साधनों का विधान होना चाहिये ।

(४) अन्य आर्थिक और सामाजिक नीतियों से सेवायोजन नीति के उद्देश्यों और साधनों का समन्वय किया जाना चाहिए ।

(५) ऐसे व्यक्ति जिन्हें अर्थव्यवस्था किसी एक निश्चित समय पर नौकरी न दे सके उन्हें उनकी आधारभूत आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये मुक्तहस्त सहायता की जानी चाहिये, जिससे वे भविष्य के उपयोगी सेवायोजन में लग सकें ।

(६) यह सारी नीतियां पूर्ण प्रजातांत्रिक प्रक्रमों के माध्यम से बनायी और लागू की जानी चाहिए क्योंकि सेवायोजक और श्रमिक उनके द्वारा विशेष रूप से प्रभावित होंगे और इसी कारण सरकारों द्वारा उनसे विचारविमर्श किया जाना चाहिये और उनका सहयोग मांगा जाना चाहिये ।

भारतीय मजदूर संघ उपरोक्त सेवायोजन नीति और रोजगार, उद्देशित योजना

को अपनाने का समर्थन करता है और इसके लिये पूँजी निर्माण और विनियोग की दिशा को प्राथमिकता देने के लिये तैयार है जिनसे उपरोक्त उद्देश्य की पूर्ति हो। परन्तु वह भेदभाव शून्य पूँजी निर्माण और उद्योग में रोजगार के उद्देश्यों से रहित पूँजी बिनियोग के बिरुद्ध है जैसे कम्प्यूटर, आटोमेशन और बड़े प्रकल्प का संयंत्र जो काफी लम्बे गर्भकाल के पश्चात लाभ प्रदान करेंगे। दूसरे शब्दों में राष्ट्रीय श्रम आयोग के इस प्रश्न के लिये कि मजदूरी के निर्धारण में श्रम के प्रति न्याय, उद्योग का विकास, पूँजी निर्माण और साहसी के प्रतिफल इत्यादि के सिद्धान्तों का कैसे प्रयोग किया जायेगा ? हमारा उत्तर यह है कि इस सम्बन्ध में कोई स्पष्ट उत्तर नहीं हो सकता जब तक यह न पता हो कि पूँजी को किस उपयोग में और किस प्रकार से लगाने की इच्छा है। यहां तक कि अभिनवीकरण अथवा आटोमेशन जैसे तात्कालिक प्रयोगों में मजदूरी को बचाने से जो पूँजी निर्माण होती है वह श्रमिकों को उनके कार्य-पदों के बाहर फेंक देती है। राष्ट्रीय स्तर पर यह भय और भी अधिक है। दूसरे शब्दों में यदि आर्थिक कर्म साहसी की स्वतन्त्र इच्छा पर छोड़ दिये जांय अर्थात् लाभ के उद्देश्य पर नियन्त्रण न हो तो कोई कारण नहीं कि क्यों निम्न मजदूरी पाने वाले श्रमिक समृद्धि सम्पन्न साहसी के हित में जोड़ने का प्रयत्न करें अथवा पूँजी निर्माण का उद्योग करें ? जिसका लाभ न तो उनको मिलेगा न रोजगार का उद्देश्य पूरा होगा और जो केवल एक सीमान्त या घटनात्मक चरित्र का होगा। निश्चित ही मजदूरी पर बन्धन क लिये विचारणीय मामला होगा। यदि यह दिखलाया जा सके कि प्रतिफलित बचतों का प्रयोग कम भाग्यवान व्यक्तियों के रोजगार के लिये किया जा रहा है। परन्तु इस प्रकार का प्रस्ताव केवल एक मजदूरी निर्धारण के सूत्र को अपनाकर निश्चित नहीं माना जा सकता, जोकि किसी रोजगार उद्देशित योजना से संगत न हो। साथ ही यह भी पर्याप्त नहीं होगा कि सरकार अथवा उसकी रोजगार विषयक योजनाओं पर विश्वास किया जाय जब तक कि ऐसी योजनायें उत्पादक सिद्ध न हों। यही कारण है कि एक राष्ट्रीय आर्थिक योजना के निर्माण में श्रमिक की भागीदारी अत्यन्त आवश्यक है जिससे उन्हें किसी भी मजदूरी निर्धारण के प्रारूप से जोड़ा जा सके। यह भी बुद्धि रहित होगा कि सरकार पर विश्वास किया जाय कि वह किसी भी प्रकार से अतिरिक्त श्रमशक्ति को सार्वजनिक क्षेत्र में खपा लेगी। यदि इस प्रकार से नये रोजगार प्राप्त व्यक्ति केवल अपने उपभोग को बढ़ा रहे हों न कि उत्पादन को जिसे उनके रोजगार का प्रमाण माना जाय तो वे अर्थ व्यवस्था में एक गम्भीर कठिनाई उत्पन्न कर देते हैं। इस प्रकार का अतिरिक्त कर्मचारी वर्ग सम्पूर्ण सेवा क भीतर मनोबल गिरा देते हैं। और प्रशानन में केवल दिखावा और चक्करदार व्यवहार उत्पन्न कर देते हैं।

बिगड़ी हुई आदतों वाले ऐसे व्यक्तियों से दबी हुई सार्वजनिक सेवायें सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में विघटन उत्पन्न कर सकती हैं। यह विश्वास करने के लिये कुछ आधार है कि इस प्रकार की कुछ बात हमारी सार्वजनिक सेवाओं के कुछ विभागों में उत्पन्न हो गई हैं। सीधी बेरोजगारी सहायता योजना को अपना लेना इस प्रकार के गलत और विघटनकारी रोजगार से अच्छा होगा। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने ठीक ही सुझाव दिया है कि ऐसे व्यक्तियों को जिन्हें अर्थव्यवस्था रोजगार नहीं दे सकती उनकी आधारभूत आवश्यकताओं को दूर करने के लिये सहायता दी जानी चाहिए शताब्दियों से भारत में यह प्रचलन रहा है कि धर्मशालायें बनायी जाँय और घरों में अन्नक्षेत्र खोले जाँय और बेरोजगारों को भोजन दिया जाय। यह उत्तम होगा कि हम इस राष्ट्रीय चलन को पुनर्जीवित करें और बेरोजगारों को लाभप्रद व्यवसाय में लगाने के लिये इसमें एक रोजगार एवं प्रशिक्षण योजना जोड़ दें। किसी भी अवस्था में समाज अपने व्यक्तियों को भूख से मरने नहीं दे सकता। इस लिये यह उत्तम होगा कि मानवशक्ति नियोजन आर्थिक सेवाओं के संगठन को इस प्रकार से किया जाय कि हम प्रत्येक व्यक्ति का उत्तम प्रबन्ध कर सकें, उसे एक उत्पादक रोजगार मे लगा सकें अथवा उसके भार को यह जानते हुए उठा सकें कि उसके लिये नये कार्य या रोजगार के अवसर ढूंढ़ना है। जब योजना में इस प्रकार की रोजगार सम्बन्धी अभिनति होगी तभी श्रमिकों का समर्थन विभिन्न विनयोग निर्णयों में प्राप्त किया जा सकेगा। भारतीय श्रमिक निश्चित ही देश के गरीब और बेरोजगार व्यक्तियों की ओर सहायता का हाथ बढ़ाने में असफल नहीं होगे। परन्तु आज जब उससे यह कहा जाता है कि मजदूरी पर बन्धन स्वीकार करे तब उसके पास यह विश्वास करने के कारण होते हैं कि इस प्रकार की मांग केवल समृद्ध पूँजीपति अथवा निष्क्रिय राजनीतिज्ञ या भ्रष्ट नौकरशाह के प्रति ही सेवा करती है। मजदूरी नीति के सम्बन्ध में निर्णयों के लिये किसी भी विनयोग योजना या नीति के उद्देश्यों के आर्थिक और रोजगार सम्बन्धी उद्देश्य ही केन्द्रीय महत्व के होते हैं। यदि श्रमिकों के प्रतिनिधियों और सेवायोजकों के सुझाव लिये जाते हैं और उन्हें श्रम बहुल उत्पादों के विकास और श्रमबहुल प्रविधियों के प्रयोग से विज्ञ रखा जाता है और सहयोगी सतत अध्ययनों के माध्यम से सेवायोजन नीति के प्रतिपादन में उनके सहयोग की कामना की जाती है तो इस प्रश्न से एक लाभदायक मजदूरी नीति का उद्भव होगा। भारतीय परिस्थिति में इस केन्द्रीय तत्व की उपेक्षा के कारण मजदूरी पर किसी योजना के अपनाने के सम्बन्ध में अनेक कठिनाई उत्पन्न हो गई हैं। यह हमारी योजना सम्बन्धी यन्त्र के परिचालन में संगठन और प्राविधिक कुशलता की कमी का एक कारण है। यदि मेरे अपने उपभोग को कम करके पूँजी का निर्माण होना है या विनयोग किया जाना है तो मुझे कम से कम यह आवश्यक मालूम होना चाहिये कि किस उद्देश्य

में वह लगाया जा रहा है। भारतीय श्रमिक अवश्य ही ऐसे रोजगार को समर्थन देगा जिसके सम्बन्ध में उसे मालूम हो कि वह उससे अधिक गरीब और दर्बल व्यक्ति भी सहायतार्थ है। परन्तु वह यह जानने के लिए ठीक ही बल देता है कि उसे इस बात की सुरक्षा होनी चाहिये कि एक पवित्र नाम लेकर उसे कहीं धोखा तो नहीं दिया जा रहा है। दूसरी ओर यदि अर्थव्यवस्था पूँजी बहुल होनी है तो इस बात की सम्भावनायें हैं कि उसका त्याग केवल बड़े लोगों की ओर समृद्ध करेगा और कदाचित् उसे उसके कार्य पद से भी दूर कर दिया उसे दोष नहीं दिया जा सकता यदि वह ऐसे सिद्धांत के अन्तर्गत जहां बड़ी मछली छोटी मछली को खा लेती है अपनी सगठित शक्ति का प्रयोग अधिक से अधिक करके अधिक से अधिक खींचने का प्रयत्न करे और पूँजी निर्माण तथा साहसी के लाभ जैसे तत्वों को कोई महत्व न दे।

यह चर्चा हमें अर्थ नीति के अन्य महत्वपूण पहलुओं की ओर ले जाती है। इस सन्दर्भ में आर्थिक विकास का दृष्टिकोण, सार्वजनिक क्षेत्र का ढांचा और कार्य, मजदूरी नीति, निजी क्षेत्र का संस्थात्मक ढाँचा और आय नीति का विचार पूर्ण रूप से सम्बन्धित विषय हो जाते हैं। आर्थिक नियोजन के बड़े मामलों की ओर जाने से पहिले हम अपनी स्थिति को इस सन्दर्भ में स्पष्ट कर दें कि पूंजी निर्माण से सम्बन्धित निर्णयों का निजी क्षेत्र के मजदूरी ढाँचे पर वर्तमान परिस्थितियों में क्या प्रभाव होता है। इस सम्बन्ध में हमारा विश्वास है कि इन मामलों में सभी निर्णय श्रमिकों के लिये इस हद तक महत्व रखते हैं कि वे कहाँ तक औद्योगिक प्रारूप को श्रमिकीकरण की ओर ले जा रहे हैं। एक बार जब प्रारम्भिक पूंजी किसी उद्योग को चलाने में लगा दी जाती है और उत्पादन के लिये श्रमिकों को कार्य में लगाया जाता है तो बाद में कार्यशील पूँजी में जो भी वृद्धि की जाती है वह श्रम के प्रति उतना ही बड़ा योगदान है जितना कि पूँजी के प्रति। अनेक वर्ष बीतने पर यह मानना तर्क शुद्ध होगा कि आनुपातिक दृष्टि से पूँजी की अपेक्षा श्रम का भाग अधिक बढ़ता है। और पूँजी एक निद्राशील भागीदार बन जाती है। एक विकासमान व्यवसाय मे यदि बाहर से लोग पूँजी लगावें तो यह माना जा सकता है कि पूँजी को श्रम के कार्यो ने आकर्षित किया है। यह सत्य है कि गिरते हुए व्यवसाय में उसे जीवित रखने के लिये लगाई गई पूँजी एक भिन्न चित्र उपस्थित करती है। परन्तु ऐसी परिस्थिति में प्रत्येक मामले की परीक्षा अलग से करनी होगी जिसे हानि की जुम्मेदारी निर्धारित की जा सके। सामान्यतया यह कहा जा सकता है कि सभी संचतियाँ श्रम के हिस्से के कारण बनी हैं। यह आवश्यक है कि मजदूरी नीति की घोषणा करने से पहिले इस भाग का भी निर्धारण कर लेना आवश्यक होगा। हमें ज्ञात है कि भारत के समान एक तुलनात्मक स्वतन्त्र पूंजी बाजार में इस

सम्बन्ध में लिया हुआ कोई भारी निर्णय पूंजी को लज्जाशील बन सकता है। और आर्थिक विकास में रोक उत्पन्न कर सकता है। परन्तु ऐसा ही अधिक बल देकर उस समय कहा जा सकता है जबकि ऐसे निर्णयों की अनुपस्थिति में मजदूरी नीति बनायी गयी हो। एक निष्कर्ष के रूप में हमें यह कहने की आज्ञा होनी चाहिये कि श्रम को पूँजी के स्वामित्व में हिस्सा देने की नीति ऐसी होनी चाहिये कि राष्ट्रीय रंगमंच पर क्रमिक श्रमिकीकरण की योजना अपनायी जा सके। अन्यत्र हमने राष्ट्रीय उत्पादकता काउंसिल द्वारा प्रतिपादित और डाक्टर गोखले स्कूल आफ इक्नामिक्स एण्ड पौलटिक्स द्वारा समर्पित प्रस्ताव का सन्दर्भ दिया है जिसमें श्रमिकों को उत्पादकता लाभों में से हिस्सा देने की बात की गई है। इसमें हम यह जोड़ते हैं कि ऐसी योजना को प्रारम्भ करते समय एक निर्धारित योजना के अनुसार श्रमिकों को संपत्तियों में स्वामित्व देना चाहिये जिससे अपनी संस्था अथवा उद्योग के विनियोग सम्बन्धी निर्णयों में वे बुद्धिमत्ता-पूर्ण और जीवन्तरुचि ले सकें। निर्धारित योजना को एक क्रमिक या स्तरित रूप में उद्योग के श्रमिकीकरण की दिशा में ले जाना चाहिये। ऐसी योजना पूँजी के अपवर्जी स्वामी को सदैव के लिये समाप्त कर देगी परन्तु साहसिक योग्यता को हानि नहीं पहुंचायेगी। वस्तुतः इस सन्दर्भ में श्रमिकों की परिभाषा में हम उन सबको सम्मिलित करते हैं जो उद्योग को पूर्ण समय देकर सेवा प्रदान कर रहे हैं अर्थात् इसमें व्यवस्थापकों का पक्ष भी सम्मिलित है। यदि हमारे द्वारा सुझाये गये ढग से मजदूरी प्रत्यान्तरों का निर्माण किया जाय और इस प्रकार वैज्ञानिक कार्य पदमूल्यांकन के आधार पर हिस्से दिये जाँय तो निश्चय ही उद्योग वर्तमान व्यवस्था के मुकाबले में अनेक गुना अच्छे प्रकार से व्यवस्थित हो जायेंगे। जबकि वर्तमान व्यवस्था में एक उद्यमी साहसी के अधपके और अनुभव शून्य लड़के और पोते सरकार और व्यवस्थापकों के लिये एक समस्या बन जाते हैं। संपतिकर का ढांचा कुछ इसी प्रकार के सिद्धान्तों पर बनाया गया है और हम उसके औद्योगिक संस्थाओं में प्रयोग का सुझाव देते हैं। इस प्रकार योजना सन्यत्र और उद्योग के स्तर पर एक मजदूरी नीति को अपनाने का प्रोत्साहन देगी। ठीक उसी प्रकार से जैसे रोजगार उद्देशित योजना राष्ट्रीय स्तर पर इस प्रकार की नीति को सम्भव करेगी।

मजदूरी नीति के प्रसंग में संगीत की तान भरने वाली रेखाओं को खींचने के उपरान्त हम अब मजदूरी योजना की विषय वस्तु पर विचार करेंगे। सर्वप्रथम इस मार्ग पर हम एक मजबूर उपभोक्ता और सर्वशक्तिमान राज्य से भेंट करते हैं। इन दोनों में से मूल्य बृद्धि की परिस्थिति में उपभोक्ता के हित पर मंहगाई भत्ते पर विचार करते समय हम विवेचन कर चुके हैं जिसे पुनः लिखना आवश्यक है। परन्तु वह कहानी का

विलोमात्मक पहलू है। एक अर्थ में उपभोक्ता सदैव ही उत्पादन प्रक्रिया पर अधिकार रख सकता है क्योंकि अन्ततः सम्पूर्ण यंत्र ही उसकी सेवा के लिए चलना चाहिए। उपभोक्ता सर्वसाधारण जनता है। उसका दृष्टिकोण शुद्ध राष्ट्रीय दृष्टिकोण है। सरकार सत्तारूढ़ दल के एक विशिष्ट राजनीतिक दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व कर सकती है। परन्तु यह उपभोक्ता के लिए नहीं कहा जा सकता है। उपभोक्ता एक कमाने वाला भी है। अत अन्ततः उपभोक्ता के हितों की शुद्ध राष्ट्रीय व्यवस्था सम्पूर्ण देश की आय की क्षेत्रीय नीति और मूल्य यंत्र के परिचालन का विवाद बन जाती है। आय की नीति के क्षेत्रीय और व्यवसायिक प्रयोग दोनों ही हैं। इसके व्यवसायिक प्रत्यान्तरों पर हम मजदूरी प्रत्यान्तर' शीर्षक में वर्णन कर चुके हैं जहां यह कहा गया है कि एक निश्चित दृष्टिकोण से सेवायोजक के हिस्से को आय वितरण में मजदूरी प्रत्यान्तरों के सामान्य सिद्धान्तों के अनुसार निर्धारित किया जा सकता है। क्षेत्रीय नीति के सम्बन्ध में हम ठीक क्रम से अब विवेचन करेंगे। इस स्थिति में हम इस बात पर बल देना चाहते हैं कि उपभोक्ता का हित एक अलग हित नहीं रह जाता जब हम एक क्रम करने वाली इकाई से हटकर सम्पूर्ण राष्ट्रीय क्रिया का विचार करने लगते हैं। इस स्थान पर उसका स्थान आय नीति ले लेती है।

सौदेबाजी के इकाई स्तर पर उपभोक्ता का हित और सरकार का हित एक निश्चित वास्तविकता बन जाते हैं। परन्तु मजदूरी निर्धारण के सन्दर्भ में इन संयोधों के सम्बन्ध में हम उपयोगी बात कर सकें इसके लिये उत्तर देने से पहिले कुछ स्पष्टीकरण की आवश्यकता होगी। प्रथमतः हमें ज्ञात होना चाहिए कि वह क्या है जिसे हम तथाकथित प्रतियोगी हितों अर्थात् श्रमिकों, पूँजी, उपभोक्ता और सरकार के बीच में बाटने जा रहे हैं। क्या वह शुद्ध लाभ है, उत्पादकता लाभ है, शुद्ध आय है अथवा कुछ और। यह हमें अंतिम लेखा व्यवस्था के प्रश्न पर ले आती है। यह अब सुविदित है कि हम लोग जिस प्रकार से अंतिम शुद्ध लाभ जानने को अन्तिम लेखे लिखते हैं वह अनेक उद्देश्यों की पूर्ति के लिये सन्तोषजनक नहीं है। बोनस एक्ट के आधीन भुगतान करने के ही लिये विभाज्य अतिरेक को प्राप्त करने के लिये अन्तिम लेखे को इस प्रकार से पुनर्लिखित किया गया है कि व्यवसायिक एकाउन्टेन्ट उसे सहमति नहीं प्रदान करते। श्रम अर्थशास्त्र के लिये अन्तिम लेखों को वर्तमान रीति से भिन्न रूप में विन्यस्त करना आवश्यक है। हमें यह करना चाहिये कि संस्था को चलते रहने के लिये आवश्यक प्रथम खर्चों को सर्वप्रथम संस्था की कुल आय में से घटा देना चाहिये। यह कुल लाभ के सबोध के समान होगा (जिसमें स्टाक की खरीद इत्यादि के लिए कुछ संशोधन किए गए हों) जिसे हम लोग आगे गणना करने के लिये आधारभूत सम्बोध मान लें।

द्वितीयत हमें प्रत्येक उद्योग के लिये विभिन्न अनुपात तय करने होंगे जोकि कुल मजदूरी बिल, संचालन व्यय और नियोजित विकास व्यय का इस कुल लाभ का अन्य समुचित वित्तीय चर से सम्पूर्ण उद्योग के सम्बन्ध में रखना चाहिये। यह राष्ट्रीय कुशलता अंकेक्षण का एक पहलू है जिस पर करारोपण का प्रारूप भी आधारित होना चाहिये। इन मामलों में फर्म का दृष्टिकोण स्पष्ट करके ही हम मजदूरी निर्धारण से सम्बन्धित निर्णय के समक्ष पहुंचते हैं। इस स्थिति में हम देख सकेंगे कि इस प्रकार से वैज्ञानिक आवटन करके उन उद्योगों में जिनकी कुशलता का स्तर नीचा हो उपभोक्ता हित और कर्मचारी हित में सघर्ष का अनुभव कर सकेंगे क्योंकि ऐसी फर्म की जीवन सम्बन्धी आवश्यकतायें उत्पादन के बाजार मूल्य को तय करती हैं। यदि उपभोक्ता को कटौती के रूप में वस्तु के मूल्य को कम करने का निर्णय लेना है (ऐसा मूल्य जो कुल उद्योग में एक सा हो) तो ऐसे निर्णय से वह फर्म प्रभावित होगी जिसकी कुशलता निम्न स्तर की है क्योंकि एक निश्चित स्तर के बाद वह निर्धारित मूल्य पर व्यवसाय नहीं चला सकेगी। किसी उपभोक्ता पर लाभ को विस्तृत करने का निर्णय तब ऐसे निर्णय की वैकल्पिक उपयोगिता और रोजगार पर सबसे दुर्बल और सीमान्त इकाई के बन्द होने से पड़ने वाले प्रभाव पर निर्भर करेगी। एक सैद्धान्तिक आधार पर यह हमें प्रत्येक उद्योग के द्वारा प्रदत्त रोजगार और आय के अवसरों के रूप में विभिन्न उद्योगों के आधार और प्रधार से उत्पन्न होने वाले समान्त-सीमांत प्रतिफलों के सिद्धान्त तक पहुंचा देती है। वर्तमान समय में यह स्थिति दो कारणों से उत्पन्न नहीं होती,– (१) मजदूरी निर्धारण में उद्योग के अनुसार मजदूरी नीति नहीं अपनाई गई है और (२) करारोपण के सन्नियम फर्म के औद्योगिक शक्ति के अध्ययन पर आधारित न होकर उसकी देश-क्षमता पर आधारित होती है। उस विस्तार पर करारोपण के सन्नियम कुशल इकाई पर अधिभार डालते हैं और सामान्य उपभोक्ता हितों से मजदूरी नीति को अर्थपूर्ण साम्य नहीं स्थापित करने देते। इस विवाद का अन्त हम यह कहकर कर सकते हैं कि उपभोक्ता हितों के लिए राष्ट्रीय चिन्तन मजदूरी निर्धारण पर इच्छित पकड़ एक उद्योगानुसार मजदूरी और मूल्य नीति स्थापित करके प्राप्त कर सकता है। परन्तु इसे सभी हितों के लिये न्यायपूर्ण बनाने के लिये करारोपण की नीति को इस प्रकार बनाना चाहिये कि एक कुशल इकाई के श्रमिकों को उच्च कुशलता के लाभ काफी मात्रा में उत्पादकता लाभों म हिस्सा प्राप्त करके मिल सके। इस बाद के संबोध की क्रिया का वर्णन हमने पृष्ठ ५१ से ५४ तक 'श्रमिकीकरण की ओर' अनुच्छेद म किया है। उपभोक्ता हितों की इस सेवा का अर्थ रोजगार में लगे कर्मचारियों की उत्पादकता म बृद्धि होगी। इस सेवा को विभिन्न उद्योगों के प्रति एक सुनियोजित विचार के माध्यम से प्रदान किया जा सकता है।

विभिन्न उद्योगों के लिये इस मार्ग की योजना हमें अन्तिम कठिन प्रश्न पर ले आती है अर्थात् विभिन्न उद्योगों और निजी और सार्वजनिक क्षेत्रों के बीच विनियोग की प्राथमिकतायें। इस विवेचन को हमने यह कहकर सरल बनाया है कि हम एक रोजगार उत्पादन योजना चाहते हैं। इसमें हम यह जोड़ सकते हैं कि उद्योगानुसार प्राथमिकताओं के इन विचारों में क्षेत्रों का निजी और सार्वजनिक विभागों में बटवारा असंगत हो जाता है। अब एक अन्तिम प्रश्न बच रहता है और वह यह कि एक विस्तृत विनियोग प्रारूप बनाया जाये जोकि न केवल राष्ट्रीय आय के विकास को प्रोत्साहन दें वरन राष्ट्रीय मजदूरी नीति की विस्तृत रेखाओं के माध्यम से उसक न्याययुक्त वितरण की सुरक्षा करे।

एक दशक पूर्व राष्ट्रीय आर्थिक विकास के लिये हमारे द्वारा प्रस्तावित रोजगार-उत्पादन योजना पर चलने से हिचक हो सकती थी। यह विचार राजनीतिक अर्थशास्त्र का एक वांछनीय विचार समझा जा सकता था। परन्तु अब अर्थयापन का विज्ञान इतना विकसित हो गया हैं कि जिसके आधार पर इस प्रश्न पर बहु-क्षेत्रीय अन्तर्कालिक माडलों और अन्य गणितीय प्रतिक्रियाओं के द्वारा एक अनुकूलतम बचत योजना को ध्यान देकर वैकल्पिक विनियोगों के बीच चुनाव पर प्रकाश डाला जा सकता है। नियोजन की सम्पूर्ण समस्या को दो अनुक्रमिक प्रश्नों में बांटा जा सकता है। सामान्य बचत दर का निर्धारण और विनियोग के घटकों का निर्धारण। सेवायोजकों और श्रमिकों के संगठनों को इन दोनों ही मामलों में चुनाव करने के निमित्त विश्वास में लिया जाना चाहिये। विभिन्न गणितीय मण्डल हमें आर्थिक विकास के वैकल्पिक पथ दिखला सकते हैं जोकि किसी अर्थ में कुशल हो सकते हैं। पथ का चुनाव सतर्क विचार द्वारा किया जाना चाहिये कि समाज को क्या स्वीकार है और उसके लिये क्या उचित है। इन दोनों आधारभूत प्रश्नों में से उचित और स्वीकार्य बचत दर का निर्धारण समाजिक कार्य-कर्ताओं के लिये अत्यन्त कठिन कार्य है। यह लक्ष्य मजदूरी नीति के निर्धारण में महत्वपूर्ण है। परन्तु जैसा हम पहिले कह चुके हैं कि विनियोग प्रारूप का रोजगार फलन बचत दर को निर्धारित करने के लिये आवश्यक जनोत्साह को जगाने के लिये अत्यन्त आवश्यक केन्द्रीय महत्व का है। केवियन सोसाइटी के लिए सर आर्थर लेविस के अध्ययन (जो एक पुस्तिका "आर्थिक नियोजन के सिद्धान्त" के रूप में प्रकाशित हो गया है) में निष्कर्ष के रूप में इस पहल पर निम्नलिखित शब्दों में विचार प्रस्तुत किया गया है।

"पिछड़े हुए देशों में नियोजन विकसित देशों की तुलना में सरकारों पर अधिक

बड़े कार्य थोपती है। सरकार को अनेक कार्य करने पड़ते हैं जिन्हें विकसित देशों में साहसियों पर छोड़ा जा सकता है। उसे औद्योगिक केन्द्र उत्पन्न करना होता है, कृषि क्रान्ति को चलाना होता है, विदेशी मुद्रा विनिमय को कठोरता से नियन्त्रित करना होता है और साथ ही जनसेवाओं और सामान्य आर्थिक सक्रियमों में महत्वपूर्ण प्रगति करनी होती है। और यह सब एक नौकरशाही के माध्यम से करना होता है जो विकसित देशों की तुलना में अत्यन्त घटिया होती है।"

इन पहलुओं का विवेचन करने के उपरान्त विद्वान लेखक ने एक प्रश्न उठाया है– वह क्या है जोकि इन गल्तियों और अक्षमताओं के रहते हुए भी एक पिछड़े हुए देश को आगे बढ़ने में सहायक हो सकता है ? वे इस प्रश्न का उत्तर निम्नलिखित सुन्दर और महत्वपूर्ण शब्दों में देते हैं।

"यदि जनता अपने पक्ष पर राष्ट्रीयता से ओतप्रोत हो, अपने पिछड़े पन के प्रति सजग और प्रगति के लिये चिन्तित हो, तो प्रशन्नतापूर्वक अनेक कठिनाइयों को उठा सकती है और अनेक गल्तियों को वर्दाश्त कर सकती है और अपने देश के पुनर्निर्माण में उत्साह पूर्वक अपने को झोंक सकती है। जनता का उत्साह नियोजन के लिये स्निग्धकारी तैल और आर्थिक विकास के लिये पेट्रोल दोनो ही हैं। एक शक्ति है जो प्रायः सभी बातों को सम्भव बना देती है। एक अत्यन्त पिछड़ा हुआ देश भी त्वरा से विकास करेगा यदि वहां की सरकार यह जानती है कि किस प्रकार से इस प्रवैगिक शक्ति को कार्य में लगाया जाये।"

हमारा यह निश्चित मत है कि यह प्रवगिक शक्ति हमारी भारतीय अर्थव्यवस्था में योजनाओं को रोजगार-विषयक बनाकर उत्पन्न की जा सकती है जिससे अंतिम भारत के अभागे व्यक्ति की आँखों से आँसू पोछे जा सकें" जैसा कि पंडित जवाहरलाल नेहरू ने भारत की स्वतन्त्रता की घोषणा करते हुए १५ अगस्त १९४७ में अपने भाषण में कहा था, और तदुपरांत उसी समय श्रमिकों को बुलाकर बचत की दर पर निर्णय लेकर उनके द्वारा योजना पर अन्तिम निर्णय लेना चाहिये क्योंकि वही निर्णय महान योजना को सफल कर सकेगा। हमें ज्ञात है कि हमारे श्रमिकों की राष्ट्रीय भावना इतनी उच्च है कि वह भारत को स्वर्णभूमि बनाने की रोमांचकारी यात्रा में जन सहयोग के वातावरण को उत्पन्न करने में सुखकर धक्के पर धक्के लगाती जायेगी। परन्तु यह सेजभार-उत्पादक योजना और नियोजन प्रक्रिया में श्रमिक सहयोग की उपेक्षा करके सम्भव नहीं होगा। ऐसे उद्देश्यों और साधनों द्वारा उत्पन्न बचत और विनियोग उससे अनेक गुणा

अधिक होगा जोकि एक अधिनायकवादी अर्थव्यवस्था में सरकारी क्रिया उत्पन्न कर सकती है अथवा जोकि नियोजक पूजीपतियों, उद्योगपतियों, व्यवसायिओं और महाजनों से प्रेरित नियोजन अथवा उपदेशों द्वारा प्राप्त करने की कल्पना करते हैं।

यहां पर उपरोक्त सुझावों में अंतर्निहित योजना के ढांचे का विस्तार करना आवश्यक नहीं है। परन्तु हम अपने दृष्टिकोण के कुछ पहलुओं पर विचार करने की स्वतन्त्रता लेना चाहेंगे। हमारे नियोजन का सम्पूर्ण प्रयत्न इन राष्ट्रीय संसाधनों को मानवीय कौशल एव प्रयत्नों के प्रयोग एव पूंजी एवं प्राविधि के प्रयोग द्वारा आर्थिक संसाधनों में परिवर्तित करना होना चाहिये। मानवीय प्रयत्नों एवं कौशल के पक्ष में जिन गुणों का हम विकास करना चाहते हैं, वे हैं; नये विचारों के लिये प्रोत्साहक भौतिक वस्तुओं में रुचि, ज्ञान वृद्धि की इच्छा, आर्थिक-अवसर एव प्रचलनशीलता की कल्पना और परिवर्तन के प्रति समायोजन की सामान्य योग्यता, दीर्घ दृष्टि रखने की योग्यता एवं इच्छा, साधनपूर्णता उद्योग एव बचत की योग्यता। ये केवल शिक्षा और प्रशिक्षण से उत्पन्न होने वाली बातें नहीं हैं वरन् जनता में भौतिक समृद्धि प्राप्त करने की इच्छा और प्रयत्नों के फूल हैं। जनता में यह प्रयत्न जमेगा जबकि वे देखेंगे और सन्तुष्ट हो जायेंगे कि प्राप्य आर्थिक संसाधन और राष्ट्र की पूँजी को उसकी जनता को पूर्ण रोजगार प्रदान करने के लिये सचल कर दिया गया है। पूँजी के पक्ष में हम वर्तमान स्थिति से प्रारम्भ करना होगा और रोजगार के अधिकतम करने के लक्ष्य को स्थिर मान कर विभिन्न माडेल बनाना होगा। विभिन्न विनयोग आवटंन की योजनाओं की परीक्षा हमें इस दृष्टिकोण से करनी होगी कि वे कितनी रोजगार-प्रयत्न की वृद्धि कर सकती हैं। यह सुविदित है कि विभिन्न क्षेत्र अपनी श्रम-सघनता में भिन्नता रखते हैं और विभिन्न क्षेत्रों में भी विभिन्न प्रक्रियाओं की श्रम सघनता अलग-अलग होती है। इस व्यायाम में हमारा सकेन्द्री लक्ष्य विभिन्न रोजगार प्रोत्साहक योजनाओं में से सर्वाधिक उत्पादक को खोजना होगा जिसमें रोजगार-फलन सबसे अधिक महत्व का होगा और उत्पादक फलन योजना के सामाजिक और आर्थिक पक्ष से सम्बन्धित होगा। भारत की तृतीय पंचवर्षीय योजना में पूँजी-उत्पाद अनुपात अत्यन्त ही भिन्न था। यद्यपि यह हमारी योजना के परिचालन पर एक दुखद आलोचना है यह हमें एक अप्रत्याशित संतोष प्रदान करता है कि एक एकमेव-प्रकल्प जनित योजना जोकि हम सुझा रहे हैं ज्ञात सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियो में जोकि तेजी से गिर रही हैं, एक अनुकूलतम परियोजना से कम व्यवहारिक प्रतिफल नहीं प्रदान करेगी। हमारे द्वारा सुझाई गई रीति दूसरी ओर एक लाभ रखेगी कि वह भारतीय जनसंख्या के एक चेतन एवं महत्वपूर्ण अंश को नियोजन प्रक्रिया में लगा देगी जिसे हम "संगठित श्रम" कहते

हैं। इसका बचत दर के निर्धारण में स्फूर्तिमय प्रवेश और इसके द्वारा रोजगार-प्रोत्साहक विनियोग प्रारूप के चुनाव द्वारा उत्पन्न हिम-गेंद का प्रभाव वर्तमान अवचेतन प्रगति रोधक स्थिति से सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति को राष्ट्रीय प्रगति के एक चेतन और शक्तिप्रेरित साधन में परिवर्तित कर देगा। दूसरे शब्दों में यह हमारा मत है कि यदि हमारे प्रकल्पों के प्रारूपों द्वारा सुझाये गये माडलों में योजना मूल्यांकन प्राविधि का प्रयोग किया जाये तो अनेक काल अवधियों में (अपूर्ण गणितीय मूल्यांकनों में प्रयुक्त एकमेव काल अवधि की अपेक्षाकृत) रोजगार-प्रोत्साहक योजना सर्वोत्तम उत्पादन उत्पन्न करेगी। इस योजना के अनुसार आय-उत्पादक विभिन्न स्तर बचत दर और पूँजी-उत्पाद अनुपातों की एक अरेखित व्यवस्था उत्पन्न कर देंगे और न केवल "आर्थिक उड़ान" की स्थिति शीघ्र ही ले आवेंगे वरन् न्यूनतम सामाजिक लागतों की रीति के द्वारा हमें एक आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था प्रदान करेंगे। प्रत्येक मामले में योजना के प्रारूप के सम्बन्ध में एक निगम्म–परिकल्पना बनानी होगी और हम यह सुझाव देते हैं कि श्रमिकों का सहयोग प्राप्त करना सर्वोत्तम परिकल्पना होगी। अर्थयापन साहित्य में यह सुविदित तथ्य है कि कुछ उद्योग श्रम की उत्पादकता पर अपने प्रभावों के माध्यम से प्रायः विकास के प्रसारकों का कार्य करते हैं। यह तत्व प्राविधिक बाह्यता का एक उदाहरण माना जाता है। इन प्राविधिक बाह्यताओं को एक भुजा मान कर, उत्पादन का उद्भव को दूसरी भुजा ओर योजना प्रारूप के भाग के रूप में उत्पादन क्षमता को तीसरी भुजा मानकर हमारा माडल एक अच्छा त्रिभुज बना सकता है। यह सत्य है चूंकि हम एक दी हुई मात्रा में पूंजी और बिनियोग के सम्बन्ध से प्रारम्भ करते हैं इसलिये नई व्यवस्था के प्रतिस्थापन या बदल की प्रक्रिया कुछ मामलों में केवल सीमांत पर ही कार्य करेगी। श्रमिक सीमांत बृद्धियां एक संगत और अन्तत अधिक उत्पादक माडल की रचना करेगी। इस आधार पर एक अन्तर्कालिक योजना बचतों का विवरण प्रस्तुत करेगी और इन बचतों के परिमाण के सम्बन्ध में हम राष्ट्रीय मजदूरी नीति का चार तत्वों के आधार पर साम्य ज्ञात कर सकेंगे, अर्थात् (१) उपभोग का प्रारम्भिक स्तर, (२) नियोजन क्षितिज, (३) नियोजन काल में उपभोग में वृद्धि और (४) सीमांत स्थितियां। इस द्वितीय स्थिति में फिर ट्रेडयूनियनों का सहयोग अत्यन्त अर्थपूर्ण एवं महत्व का हो जायेगा। तभी वह बचत की दर और रोजगार की बृद्धि में सहसंबध स्थापित कर सकेगा। जो श्रमिक रोजगार में हैं इस प्रकार से तय करेंगे कि उन्हें तुलनात्मक दृष्टि से कम भाग्यवान लोगों को रोजगार देने के लिये कितना त्याग करना चाहिये और सशक्त शरीर व्यक्तिओं को कोई कार्य दिये बिना वे कितना भार वहन कर सकते हैं। राष्ट्र के उद्योग के श्रमिकीकरण को उसकी रूपरेखा प्राप्त हो जायेगी और श्रमिकों का संघर्ष जनता की महान यात्रा को स्थान दे देगा, जिसके द्वारा

राष्ट्र एक संगठित प्रयास द्वारा एक सचेतन मार्ग पर चल पड़ेगा और उसकी सहायता आर्थिक योजना का निर्देशक मानचित्र करेगा।

एक प्रश्नावली के रूप में उपरोक्त विवेचन का समापन सामान्य शब्दों में करते समय यह कहा जा सकता है कि उद्योग का विकास, साहसी के प्रतिफल, पूजी निर्माण इत्यादि जैसे आधारों का मजदूरी ही निर्धारण के लिये उस समय तक न्याययुक्त विचार नहीं किया जा सकता है जब तक कि हम उनसे उत्पन्न पूँजी लगाने की रीति या रूप का विवरण नहीं देते। इकाई के स्तर पर इस कार्य का रूप उद्योग का क्रमिक श्रमिकीकरण पूँजी एकन्ध और कार्यशील पूँजी के स्तरित श्रमिक स्वामित्व के आधार पर होना चाहिये। राष्ट्रीय स्तर पर इसे रोजगार प्रोत्साहक योजना के बनाने में श्रमिकों की भागीदारी के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। यदि ये दो कार्य कर लिये जायें तो हम श्रमिकों में अनन्त उत्साह उत्पन्न कर सकेंगे, जिससे वे इकाई स्तर पर एक उचित मजदूरी व्यवहार और राष्ट्रीय स्तर पर एक राष्ट्रीय मजदूरी नीति बना सकेंगे जिसमें उद्योग, पूँजी निर्माण और साहस के लिये पूर्णतयः न्याय मिल सकेगा। तब उद्योग का विकास रोजगार प्रोत्साहक प्रक्रियाओं और प्रकल्पों में विनियोग का स्वरूप ग्रहण कर लेगा और पूँजी निर्माण एक नई विधा के प्रवेश से सर्वसाधारण जनता और श्रमिकों के द्वारा बचतों की योजना से और मजदूरी निर्धारण के औद्योगिक निर्णयों के आधार पर होने लगेगा। हम इस सम्बन्ध में स्पष्ट हैं कि हमारे द्वारा सुझाए गए मार्ग के अतिरिक्त यह व्यवहारिक नहीं होगा। एक सीमा तक इसका अर्थ समाज के मूल्यांकनों को बदलना है। और हमारे मत में सामाजिक एवं आर्थिक दोनों ही दृष्टिकोणों से यह आवश्यक है। सामाजिक पक्ष में यह आवश्यक है कि सर्व साधारण को शान्ति प्रदान करने के लिए आर्थिक क्रिया में जनता का निर्माणात्मक सहयोग उत्पन्न करना आवश्यक है और आर्थिक दृष्टि से इससे हमें कदाचित एक अनुकूलतम आर्थिक विकास का माडल प्राप्त होगा जिसमें उपभोग आध्यात्मकताओं, उत्पादन, लक्ष्यों, वितरण प्रभावों और आत्मनिर्भर विनिमय यंत्र का विचार होगा।

उपभोक्ता हित के कोण से हमारे द्वारा सुझाये गये माडल की एक विशिष्ट प्रवृत्ति है (यदि करारोपण के ढांचे को एक फर्म उद्योग ढांचे के स्थान पर उद्योग-जनित ढांचा बनाया जाये कि वह मूल्याधन व्यवस्था के प्रति भावुक होगा जिसमें नीति विषयक निर्णय करने के लिये सीमान्त फर्में आवश्यक' प्रदत्त प्रदान करेंगी। मूल्य में एक कमी तब एक ऐसा प्रतिपादन होगा जो यदि शुद्ध बाजार स्थितियों पर न छोड़ा जाय तो ऐसा निर्णय होगा जो कि उपभोक्ता कुछ अकुशल सेवायोजकों के बिरुद्ध स्वय ले लेंगे। झगड़ा

श्रमिकों और उपभोक्ताओं के बीच नहीं है क्योंकि बेरोजगारी सहायता की व्यवस्था के माथ श्रमिक एक वर्ग के रूप में केवल सीमान्त रूप में मूल्य निर्णय के लिये चित्र में उपस्थित होंगे परन्तु दाँव पर जो लगा है वह यह है कि एक ओर फर्मों की संख्या अथवा श्रमिकों की संख्या कम हो (सम्मिलन अथवा स्थानान्तरण अथवा प्रतिबन्ध के द्वारा) और दूसरी ओर राष्ट्रीय स्तर पर उपभोक्ता आय। वह स्थिति जब पूर्ण रोजगार कायम हो जाये ऐसे निर्णय अभिनन्दनीय होंगे क्योंकि वे न केवल उपभोक्ताओं के मूल्य की कमी से लाभ पहुंचायेंगे वरन् अकुशल और कम देने वाली इकाइयों का निरसन कर के श्रम की सीमान्त मूल्य को बढ़ा देंगे और उत्पादक रोजगार अथवा श्रम उत्पादकता को प्रोत्साहन देकर आय को अधिकतम कर देंगे। एक स्वतन्त्र बाजार में प्राकृतिक प्रक्रिया के द्वारा वे मिट जायेंगे जब कि उपभोक्ता को उसका सिंहासन प्राप्त हो जायेगा। ऐसे नियोजन माडल के संचालन में मजदूरी, आय और मूल्यों की एक संग्रथित नीति स्वाभाविक उपप्रमेय होगी। वर्तमान नियोजन की एक खराबी यह है कि वह संसाधनों को चलायमान बनाने का कार्य प्रशासकों पर छोड़ देती है और जिसके प्रतिफल में करारोपण का ढाँचा आय पर सीधा असर डालता है यह न जानते हुये कि वह मूल्यांकन और अर्थ व्यवस्था की मजदूरी नीति पर कितना नुकसान कर देगा। हमें ज्ञात है कि इन विचारों को रखते समय हम लोग, आर्थिक विचारों को एक नया मोड़ दे रहे हैं। इसकी मान्यताओं और निष्कर्षों पर हम विचार-विमर्श करने को तैयार हैं। परन्तु दूसरी ओर यह ध्यान देना उत्तम होगा कि अनेक नियोजक जहाँ आय नीति और मूल्य नीति की बात करते हैं वहीं उनके दृष्टि में मजदूरी–संकोच अथवा मजदूरी–प्रतिबन्ध भी रहते हैं। हम चेतावनी देते हैं कि एक मजदूरी–आय–मूल्य नीति के सम्बन्ध में कोई भी फीका प्रलयकारी प्रतिफल उत्पन्न कर देगा। इसके बिपरीत मूल्य निर्धारण का हमारे द्वारा सुझाया गया यंत्र, जो उत्पादक रोजगार की योजना के एक फलन के रूप में कार्य करता है और एक सीमान्त फर्म के ऊपर प्रभावों पर केन्द्रित रहता है अधिक वास्तविक है और सरकार द्वारा आसानी से चलाया जा सकता है। हमें ज्ञात है कि रोजगार–प्रोत्साहक योजना पर तत्काल चले जाने का एक प्रभाव यह होगा कि शीघ्र ही अनेक कृषि–औद्योगिक प्रकल्प, लघु प्रमाण उद्योग और सहकारिताओं द्वारा व्यवस्थित एवं वित्तीकृत नये नगरों का प्रादुर्भाव हो जायेगा। यह एक तात्कालिक चित्र है जोकि हम अर्थ व्यवस्था को खीचना चाहते हैं। हमारी योजना का प्रथम चरण पूर्ण रोजगार पर समाप्त होना चाहिये जिसमें ऐसी आर्थिक संस्थायें हों जो कि सुरक्षा के लिये विकसित क्षेत्र और सहयोगी उद्योगों से पूर्ण हों जिससे आवश्यकता के समय शीघ्रता से युद्ध कालीन व्यवस्था पर पहुंचा जा सके। परन्तु तदुपरान्त द्वितीय चरण में पूर्ण रोजगार के आधार से उच्च से उच्चतर भौतिक समृद्धि की वस्तुओं का स्तर एक

प्राविधिक क्रान्ति के माध्यम से प्राप्त होता जायेगा जिसमें प्राविधिक का चुनाव हमारे कल्याण की निजी कल्पना के अनुकूल होगा। यह प्रक्रिया हमारे देश के लिये एक दूसरे कारण से भी उपयुक्त है। हमारी एक प्राचीन एवं प्रौढ़ सभ्यता है। यह हमारी संस्कृति की महानता नहीं है कि हम अपने रूढ़िगत मूल्यों और सांस्कृतिक स्वरूपों को भूल कर आर्थिक विकास को उठा कर आदर्शवाद का स्थान प्रदान कर दें। यहाँ तक कि जितने भी तथाकथित भौतिक दृष्टि से उन्नत पश्चमी देश हैं उन्होंने आर्थिक विकास एक अत्यन्त पीड़नकारी प्रक्रिया से अधिनायकवादी अमानवीयता या सम्प्रदायवादी शोषण के माध्यम से प्राप्त किया है। यह सब करने के उपरान्त प्रसन्नता और आनन्द के कौन से वास्तविक स्तर उन्होंने प्राप्त किये हैं ? यह एक अत्यन्त सांस्कृतिक रूप से विकृति एवं अशान्त दृष्टिकोण है जिसमें रूढिगत मूल्यों और सांस्कृतिक स्वरूपों को आर्थिक विकास का अवरोध समझा जाता है और आधुनिकता की बाधा के रूप में मिटा कर मानवीय सुख के खजाने को मिटाया जाता है। एक अधिक ज्ञान गम्भीर दृष्टि रूढ़िगत मूल्यों और सांस्कृतिक स्वरूपों को एक ओर और मानवीय कल्याण के साधनों के रूप में आर्थिक विकास की प्रक्रियाओं को दूसरी ओर रुझान देती है। जब हम आर्थिक विकास की कल्पना को मानव के विकास के चक्रों के परिप्रेक्ष्य में देखते हैं तो हमारे माडल का महत्व अपना पूर्ण मूल्य प्राप्त कर लेता है। एक वांछनीयता के रूप में भी वह हमें प्राविधिक दृष्टि से एक कुशल हल प्रदान करता है। परन्तु अपने विशाल क्षेत्र में यह उसे देखा जाये तो वह सही संस्थात्मक प्रारूप और उनके प्राप्त करने की व्यवस्थायें सुझाता है। इन योजनाओं को उत्पन्न करने, अपनाने और सचालित करने की संस्थायें श्रमिकों और नागरिकों की सहकारितायें, संयुक्त व्यवस्था और श्रमिक काउंसिलें एक उद्योग के सम्बन्धित सभी व्यक्तियों के औद्योगिक परिवार और लक्ष्यों के नियोजन और परिचालन के लिये राष्ट्रीय स्तर की त्रिस्तरीय संस्थायें हैं। इन सभी सस्थाओं में से समाज के आर्थिक संगठन में कदाचित "औद्योगिक परिवार" की सस्था केन्द्रीय महत्व की है। हम ऊपर यह दिखला चुके हैं कि मजदूरी नीति, मूल्य नीति, रोजगार नीति और करारोपण नीति का विकास तर्क शुद्ध आधार पर एक उद्योग को इकाई मान कर कैसे किया जा सकता है। श्रम मोर्चे पर औद्योगिक यूनियनों के लिये प्रयत्न जारी है। बैंकिंग और अन्य वित्तीय सेवा संस्थायें भी कुशलता से विकसित की जा सकती है जब कि वे भी उद्योगानुसार विशिष्टता प्राप्त कर लें। हम उत्पादकता शीर्षक अपने अध्याय में यह बतलायेंगे कि अभिनवीकरण की योजनायें और अन्य उत्पादकता के माप तथा व्यावहारिक वैज्ञानिक शोध का सम्बन्ध भी ठीक प्रकार से प्राप्त किया जा सकता है यदि उद्योग को राष्ट्र के आर्थिक जीव का एक संगठित अंग माना जाये। यह सब ...ा के एक क्षेत्र के रूप में सार्वजनिक और निजी क्षेत्र को स्वीकार करता है। आज

भेद करने की आवश्यकता इस कारण उत्पन्न हुई प्रतीत होती है—क्योंकि हम राष्ट्र को सरकार मान लेते हैं और जन नीति के बृहद एवं विश्वसनीय साधन के रूप में केवल सार्वजनिक क्षेत्र को ही लेते हैं। भारतीय मजदूर संघ राष्ट्र को सर्वोच्च सत्ता स्वीकार करता है, जिसके समक्ष सरकार और निजी क्षेत्र का समान मानता है। दोनों ही को चाहिये कि एक प्रकार से राष्ट्र की सेवा करें और एक समान अनुशासन के जुयें में बंध जायें। आर्थिक और सामाजिक विचार की वास्तविक रीति-नीति उद्योग के आधार पर निर्धारित होनी चाहिये चाहे स्वामित्व का प्रकार या रूप कोई भी क्यों न हो। प्रत्येक उद्योग को एक स्वतन्त्र लक्ष्य और समुचित अंग के माध्यम से एक राष्ट्रीय अनुशासन जनता द्वारा दिया जाना चाहिये। यदि संसदीय प्रजातन्त्र वह अंग हो तो कदाचित कार्यकारी प्रतिनिधित्व के आधार पर चुना गया एक ससद "एक उद्योगों का परिषद" एक ऐसा आदेश उन राजनीतिज्ञों के समुदाय की अपेक्षा अधिक बुद्धिमानी से दे सकेगा जोकि क्षेत्रीय विचारों से प्रेरित चुनाव से आये हैं। तत्काल हम यह सुझाव दे सकते हैं कि सभी आर्थिक हितों जैसे श्रमिक, किसान, उद्योगपति इत्यादि का प्रतिनिधित्व करने वाली एक राष्ट्रीय परिषद को समुचित संस्था समझा जाये जोकि हमें एक योजना का माडल और क्षेत्रीय उद्योगानुसार मजदूरी आय और मूल्यों के ढांचे का प्रारूप प्रदान कर सकती है। मजदूरी का व्यवहार और मजदूरी से सम्बन्धित नीति का तब समय-समय पर इस एजेन्सी के द्वारा निर्धारण होगा। क्योंकि कोई स्थिर या कठोर नीति इस सम्बन्ध में नहीं हो सकती है जोकि राष्ट्रीय श्रम आयोग प्रदान कर सके। वह एक विस्तृत यंत्र बतला सकता है जो समय की आवश्यकताओं के अनुसार उचित नीति का निर्धारण एवं संचालन कर सके और एक विशिष्ट सामाजिक संस्था के रूप में वह सही मजदूरी नीति के विकास के लिये आवश्यक निर्देशक रेखायें खीच सकता है। उपरोक्त अनुच्छेद में हमने जो प्रयत्न किया है वह केवल यह है कि ऐसे मार्ग के सम्बन्ध में निर्देश करें, जोकि राष्ट्रीय श्रम आन्दोलन आर्थिक सिद्धान्तों और प्रक्रियाओं को पूर्ण ध्यान देते हुये प्रतिपादित कर सकता है।

वेतन भुगतान की रीतियाँ और सामान्य मामले

मजदूरो के विषय पर प्रश्नावली के अन्य अंगों पर संक्षेप में प्रकाश डालना उचित होगा। मजदूरी के भुगतान के लिये प्राय नगद भुगतान की रीति अपनाई जाती है जोकि मुद्रा की अर्थव्यवस्था के बढ़े हुए महत्व के कारण है और ऐसी ही चलनी चाहिये। जहां तक सम्भव हो उसे रेखांकित चेकों के द्वारा भुगतान में बदल देना चाहिये जिससे बैंकिंग की आदत बढ़े और सुरक्षा और सत्यता का ध्यान रखा जा सके।

जहां मजदूरी के भुगतान को वस्तुओं के द्वारा किया जा रहा है उसे छोड़ना नहीं चाहिये। वह निर्देशांक से बन्धे हुए वेतन पैकेट के समान है क्योंकि वह वास्तविक मजदूरी प्रदान करता है। ऐसा गावों में होता है और इस प्रकार के भुगतान को संचालित करने वाले किसी नियम में परिवर्तन करने में इतनी प्रशासनिक समस्या उलझी हुई है कि उन पर विचार करना अनार्थिक होगा। समय कालिक वनाम वस्तुदर मजदूरी पुराना प्रश्न हो गया है। उसे सामूहिक सौदेबाजी के लिये छोड़ देना उपयुक्त होगा। इस सम्बन्ध में कोई समरूपता अत्यावश्यक नहीं है। हम लोग एक विभाजित वेतन पैकेट के पक्ष में नहीं है जिसमें आधारभूत वेतन, मंहगाई भत्ता और उत्पादकता भुगतान शामिल हो। श्रमिकों के लिए इस प्रकार का विभाजन हानिकर होगा क्योंकि वह इन सम्बोधों से ऐसा अन्तर्सम्बन्धित करता है कि प्रायः श्रमिक पर मजदूरी बढ़वाने में अनेक ओर से आक्रमण सहना होता है। निर्देशांक-बद्ध वेतन-पैकेट की व्यवस्था होनी चाहिये जिसमें मूलभूत वेतन और मँहगाई भत्ता एक साथ हो जिससे मजदूरी को एक वास्तविक मजदूरी का स्वरूप दिया जा सके। वास्तविक मजदूरी श्रम उत्पादकता की बृद्धि के साथ बढ़नी चाहिये और उसे चाहिये कि एक समुचित मजदूरी नीति के आदेश का पालन करे। यदि इस व्यायाम में प्रोत्साहक भुगतान की एक व्यवस्था प्रविष्ट कराई जा सके तो दी हुई परिस्थितियों में मनोवैज्ञानिक आधारों पर वेतन के भुगतान की तिथि के अलावा किसी अन्य दिन एक प्रोत्साहक भुगतान की व्यवस्था की जा सकती है। हम लोग इस बाद के विभाजन के विरुद्ध नहीं हैं जहाँ इस प्रकार का विभाजन उत्पादकता के हित में हो। न्यूनतम मजदूरी के सम्बन्ध में हम लोग इसी अध्याय में पहिले विवेचन कर चुके हैं परन्तु बोनस के सम्बन्ध में हमने इस विषय पर विशद विवेचन श्रम सन्नियम शीर्षक अध्याय में किया है।

मुद्रक—टिप-टाप प्रिन्टर्स • बिरहाना रोड, कानपुर–१ • फोन ५३२३७